

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गी जयतः



वर्ष १४

आश्विन, सम्वत् २०२५

संख्या ५



श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु

सम्पादक—त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्वक्तित्वेदान्त नारायण महाराज

कार्यालय—श्रीकेशवजी गोड़ीय मठ, पो० (मथुरा) उ०प्र०

संस्थापक और नियामक
परमहंस स्वामी ॐ विष्णुपाद १००८ श्री-श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजजी

प्रचार संपादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज

सहकारी सम्पादक-संघः—

१. त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (संघपति)
२. त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज
३. विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, नव्य व्याकरण, पुराण-इतिहास-धर्मशास्त्र सांख्य-भाष्यार्थ, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न, एम. ए., पी० एच० डी०
४. पण्डित श्रीयुत केदारदत्त तत्राडी, साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार, एम. ए. पो. एच. डी.
५. पण्डित बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ
६. पण्डित श्रीयुत अच्युत गोविन्द दासाधिकारी 'साहित्यरत्न'
७. पण्डित श्रीयुत श्रीकृष्णस्वामोदास ब्रह्मचारी
८. पण्डित श्रायुत सत्यपाल दासाधिकारी एम. ए.

कार्याध्यक्ष—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज

{ वार्षिक भिक्षा
५ }

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१. राधिकाष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रम्	श्रीश्रील रघुनाथदास गोस्वामी	८१
२. श्रीगौड़ीयों का वेष	जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर	८५
३. प्रश्नोत्तर (पारमार्थिक साहित्य)	जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर	८६
४. ऐसे कब करिहौ गोपाल (कविता)	(सूरदासजीकी पदावली से)	९२
५. संदर्भ-सार (श्रीकृष्ण-संदर्भ-२७)	त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रीती महाराज	९३
६. श्रीश्रीचैतन्य-शिक्षामृत	जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर	९६
७. परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवका नित्यलीला में प्रवेश	श्राकुञ्जबिहारीदास ब्रह्मचारी	९८
८. श्रीगोपालचम्पूका प्रतिपाद्य विषय	श्रीवनमालीदास शास्त्री	१०२

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुख-पत्र
श्रीभागवत-पत्रिका

(पारमार्थिक मासिक)

वर्ष १४

(श्रीगौराब्द ४८२ त्रिविक्रम से—४८३ मधुसूदन
सम्बत् २२२५ ज्येष्ठ— २०२६ वैशाख,
सन् १९६८ जून— १९६९ मई)

प्रतिष्ठाता—

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंसस्वामी ॐविष्णुपाद १००८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज

वर्त्तमान सभापति—आचार्य

त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराज

सम्पादक—

त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

प्रकाशक—

श्रीकुञ्जविहारी ब्रह्मचारी 'सेवा-कोविद्'
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, पो० मथुरा (मथुरा)

वार्षिक भिक्षा ५) मात्र

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुख-पत्र

‘श्रीभागवत-पत्रिका’

के प्रतिष्ठाता

नित्यलीलाप्रविष्ट रमहंसस्वामी ॐ विष्णुपाद १००८ श्री-श्रीमद्भक्ति-
प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी

वर्तमान सभापति और आचार्य
परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराज

प्रचार संपादक—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज

सहकारी संपादक-संघः—

१. त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (संघपति)
२. त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज
३. विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, नव्य व्याकरण, पुराण-इतिहास-धर्मशास्त्र
सांख्य-आचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न, एम. ए., पी० एच० डी०
४. पण्डित श्रीयुत केदारदत्त तत्राठी, साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार, एम. ए. पी. एच. डी.
५. पण्डित बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ
६. पण्डित श्रीयुत अच्युत गोविन्द दासाधिकारी ‘साहित्यरत्न’
७. पण्डित श्रीयुत श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी
८. पण्डित श्रीयुत सत्यपाल दासाधिकारी एम. ए.

कार्याध्यक्ष—त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज

{ वायिक भिक्षा
५)

पण्डित श्रीयुत कृष्णबिहारी ब्रह्मचारी ‘सेवा-कोविद’ कर्त्क श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ कंसटीला, पो० मथुरा, (मथुरा)
से प्रकाशित तथा श्री हेमन्द्रकुमार, बी० एस्० सी०, एल-एल० बी, कर्त्क
साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा में मुद्रित

श्रीभागवत पत्रिकाके चौदहवें वर्षकी

विषय-सूची

विषय	संख्या/पृष्ठ
(१) अपनी कुछ बातें	१२।२५१
(२) ऐसे कब करिहौ गोपाल (कविता)	५।६२
(३) कृपाकी कोर कीजै कृष्ण प्यारे (कविता)	१२।२५६
(४) कृष्णकी रूप-माधुरी (कविता)	८।१५८
(५) कविता पुष्पांजलि	१-२।२६
(६) क्या वेदोंमें गोमांस-भक्षण का विधान है ?	१-२।३०
(७) गोपियोंका कृष्ण तादात्म्य	१-२।२२
(८) गोपियोंके अतृप्त नैन (कविता)	३-४।७६
(९) गौड़ीयोंका वेष	५।८५
(१०) त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिसाधक निर्भिकचन महाराजका नित्यलीलामें प्रवेश	६।१६५
(११) धन्य कलि धन्य है (कविता)	१२।२५४
(१२) नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद् गुरुदेवकी स्मृतिमें विरह-महामहोत्सव और विरह-सभा	७।१४३
(१३) परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवका नित्यलीलामें प्रवेश	५।६८
(१४) परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुदेवकी आविर्भाव-तिथि पर दीन-हीनका हृदयोद्गार	११।२४५
(१५) परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुदेवके आविर्भावोत्सव पर दीन-हीनकी श्रद्धा-कुसुमांजलि	११।२४६
(१६) परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुदेवके आविर्भावोत्सव पर विरहपूर्ण हृदयोच्छ्वास	६।१८६
(१७) पूज्यपाद श्रीमद् अद्वैतदास बाबाजी महाराजका महात्रयाण	८।१७४
(१८) प्रभु, मेरी विनति सुन लीजै (१) (कविता)	६।१२६
(१९) प्रभु मेरी विनति सुन लीजै (२) (कविता)	६।१८०

विषय

संख्या/पृष्ठ

(२०) प्रचार-प्रसङ्ग	१-२।३२, ३-४।७७, ६।१६७, १२।२६८
(२१) प्रश्नोत्तर [प्रकरण-प्रस्थान १-२।४, श्रीमद्भागवत ३-४।५०, पारमार्थिक साहित्य ५।८६, अभिषेक-तत्त्व ८।१५६ वैष्णो भक्ति १०।२०७, वैष्णो भक्ति ११।२३२, श्रद्धा १२।२५५]	
(२२) पाश्चात्य देशोंमें श्रीश्रीचैतन्य वाणीका प्रचार	१२।२७१
(२३) भजो रे मन नन्दकुमार (कविता)	३-४।७२
(२४) भारत और परमार्थ	१०।२०३, ११।२२८
(२५) माननीया श्रीमती महालक्ष्मी देवीका परलोकगमन	१२।२६५
(२६) मीराबाई और भक्ति-तत्त्व	८।१७१
(२७) यदि गौरचन्द्र न आते (कविता)	१२।२६७
(२८) युगल-स्वरूपका ध्यान (कविता)	३-४।७६
(२९) रे मन ! गौर-गौर नित गइए (कविता)	१२।२७०
(३०) रे मन ! जनम सफल करि लीजै (कविता)	११।२४४
(३१) ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका नित्यलीलामें प्रवेश	७।१३७
(३२) वेदोंमें वर्णित परब्रह्म गोपियोंके गोदमें	३-४।४६
(३३) शिक्षक और शिक्षित	८।१५६
(३४) घीघ्र ही संग्रह करें (विज्ञापन)	६।१२८
(३५) श्रीकृष्णस्य महानन्दारुख-स्तोत्रम् (पद्य)	१०।२०१
(३६) श्रीकृष्णस्य लोलामृतनामकं स्तोत्रम् (पद्य)	१२।२४६
(३७) श्रीगुरुदेवस्तवामृतम्	६।१७७
(३८) श्रीगोपालचम्पू का प्रतिपाद्य विषय	५।१०२
(३९) श्रीत्रिभंगी-पञ्चक स्तोत्रम् (पद्य)	११।२२५
(४०) श्रीचातुर्मास्य	१-२।३३
(४१) श्रीचैतन्य महाप्रभु गाइए (कविता)	१-२।१८
(४२) श्रीभागवत पत्रिकाके प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन	६।१२७
(४३) श्रीमद्भागवत (१) (लेख)	१-२।२
(४४) श्रीमद्भागवत (२) (लेख)	३-४।४४
(४५) श्रीमद्भागवत के टीकाकार (श्रीधरस्वामी-२)	३-४।५८
(४६) श्रीमद्भागवत-महिमा (श्लोक)	१-२।१

विषय	संख्या।पृष्ठ
(४७) श्रीमद्भागवतमें माघुयंभाव	१-२।१३, ३-४।७३, ५।१२९
(४८) श्रीराधिकाष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्रम्	३-४।४१, ५।८१, ६।१०५, ७।१२६
(४९) श्रीललिताष्टकम् (पद्य)	८।१५३
(५०) श्रीवेदान्त-चतुष्पाठीके छात्रोंकी सफलता	६।११७
(५१) श्रीव्यासपूजाका निमन्त्रण	८।१७५
(५२) श्रीव्यासपूजाके अवसर पर प्रति-निवेदन	६।१८१
(५३) श्रीव्यासपूजा क्यों की जाती है ?	६।१९०
(५४) श्रीश्रीचैतन्य-शिक्षामृत	१-२।३६, ५।६६, ६।११२, १०।२१८
(५५) श्रीश्रीदामोदर-व्रत और अन्नकूट-महोत्सव	६।१२८
(५६) श्रीश्रीनवद्वीप घाम परिक्रमा और श्रीश्रीगौर-जन्मोत्सव	१०।२२४
(५७) श्रीश्रील गुरुदेवके विरहोत्सव पर प्रार्थना-कुसुमाञ्जलि	८।१६६
(५८) सन्दर्भ-पार [श्रीकृष्ण-सन्दर्भ—(२५) १-२।७, (२६) ३-४।५२, (२७) ५।६३, (२८) ६।११८, (२९) ८।१६७, (३०) १०।२१२, (३१) ११।२३७, श्रीभक्ति-सन्दर्भ १२।२६१]	
(५९) सम्बन्ध (लेख)	१२।२५७
(६०) संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके विभिन्न नगरोंमें श्रीश्रीगुरु महाराज की स्मृतिमें विरह-सभा	७।१४६
(६१) सम्राट् कुलशेखर की प्रार्थना	३-४।६६
(६२) सूत्र-विद्वेष	६।१०६, ७।१३२

• श्री श्रीगुरुगोराङ्गो जयतः •

*	स बं पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।	*
धर्मः स्वतुष्टितः पुसां विष्वक्सेन कथासु यः ।		नोपाययेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।
*	अहेतुकव्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ।	*

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहेतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।

वर्ष १४ { गौरान्द ४८२, मास—श्रीधर ४, वार—प्रद्युम्न
मंगलवार, ३२ आसाढ़, सम्बत् २०२५, १६ जुलाई, १९६८ } संख्या १-२

श्रीमद्भागवत-महिमा

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वेष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ।
यत्र ज्ञान-विराग-भक्ति-सहितं नेष्कर्म्यमाविष्कृतं
तच्छृण्वन् सुपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥

(श्रीमद्भा० २।१३।१८)

—यह श्रीमद्भागवत पुराण सर्वथा निर्मल है । भगवान्‌के प्यारे भक्त वेष्णव इससे बड़ा प्रेम करते हैं । इस पुराणमें केवल जीवनमुक्त परमहंसोंके सर्वश्रेष्ठ और मायाके लेशसे रहित सर्वथा निर्मल ज्ञानका गायन किया गया है । इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि इसका नेष्कर्म्य भी ज्ञान-वैराग्य और भक्तिसे युक्त है । जो इसका श्रवण, पठन और मनन करते हैं, उसे भगवान्‌की भक्ति प्राप्त हो जाती है और वह मुक्त हो जाता है ।

श्रीमद्भागवत

श्रीमद्भागवतके दसवें स्कन्धपर आजकल एक सुसिद्धान्तपूर्ण एवं प्रौढ़ विवृतिका होना अत्यन्त आवश्यक है। यह विवृति केवलमात्र अनुस्वार-विसर्गके पाण्डित्यकी प्रदर्शनी या प्राकृत सहजिया लोगोंकी प्राकृत उच्छृङ्खल भावनाओंकी नुमाइश मात्र न हो। बल्कि इसमें ऐसी सामग्री हो कि जिससे अप्राकृत रस-पिपासुओं एवं रागानुगीय साधक भक्तोंको कुछ लाभ हो सके। श्रीमद्भागवत विश्व का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थरत्न है। यह केवल कल्पनाकी बात न हो है, बल्कि विश्वके किसी भी भागका कोई भी निरपेक्ष विचारक यदि इस विषयमें अनुसंधान करे तो वह अवश्य ही यह कहनेके लिये बाध्य होगा कि श्रीमद्भागवत विश्वका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है।

श्रीमद्भागवतमें संशय-नास्तिक्य-निर्गुण-क्लीब-पुरुष-मिथुन-स्वकीय-पारकीय विलासका क्रमशः उत्तरोत्तर उत्कर्षका वर्णन है। दशम स्कन्धमें श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंका वर्णन है। परन्तु उसके पहले नौ स्कन्धोंकी रचनाका प्रयोजन क्या है? इसमें गूढ़ रहस्य है। श्रीमद्भागवतका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है—कृष्ण-लीला। परन्तु कृष्ण की लीला-कथाओंको पढ़-सुनकर कोई अपराध-पंकमें निमज्जित न हो जाय तथा श्रद्धालु व्यक्ति पहले भगवत्-तत्त्व, शक्ति-तत्त्व, जीव-तत्त्व, जगत्-तत्त्व, भक्ति-तत्त्व और इनमें पारस्परिक सम्बन्ध ज्ञानको जानकर श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंके

श्रवणका अधिकारी हो सके—इसीलिए पहले नौ स्कन्धोंमें संशय, नास्तिक्य, निर्गुण, क्लीब, पुरुष, मिथुन और स्वकीय—इस विषयोंका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करके अंतमें अप्राकृत पारकीय विलास का वर्णन दसवें स्कन्धके गोपी-गीत आदि स्थलों में किया गया है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके पहले भी तो अनेकों व्यक्तियोंने श्रीमद्भागवतका पाठ किया है; परन्तु जिन्होंने श्रीरूपानुगवर श्रीकविराज गोस्वामी द्वारा रचित 'श्रीचैतन्य-चरितामृतका पहले पाठ करके पीछे श्रीमद्भागवतका पाठ किया है—श्रीचैतन्य-चरितामृतके भीतर श्रीमद्भागवतका पाठ किया है, केवल उन्होंने ही श्रीमद्भागवतके तात्पर्य और गूढ़ उद्देश्यको हृदयङ्गम किया है।

प्राकृत सहजिया लोग श्रीमद्भागवतका पाठ और उसकी व्याख्या तो करते हैं, परन्तु उनके पाठ-प्रवचन सम्पूर्ण रूपसे अर्थ-व्यवसायके लिए होते हैं। ऐसे पाठों या ऐसी व्याख्याओंसे श्रीचैतन्य-चरितामृत-कथित उद्देश्यको अवहेला होती है तथा श्रीमद्भागवतका गूढ़ तात्पर्य प्रकाशित न होकर और भी आच्छादित हो पड़ता है। असंख्य सहजिया लोगोंने अपनी भावुकताके अनुरूप असंख्य प्रकारकी व्याख्याएँ और विवृतियाँ लिखकर लोगोंका मनोरंजन करके अपने और दूसरोंके लिए नरकका मार्ग

प्रस्तुत किया है। हम लोग ऐसी विवृति या व्याख्या लिखनेके लिए प्रस्तुत नहीं हैं।

श्रीमद्भागवत निगमकल्पतरुका प्रपक्व फल है—

निगम-कल्पतरुर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥

निगम का अर्थ 'वेद' है। वेद समस्त प्रकारकी कल्पनाओं या मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाले कल्पतरु हैं। अभक्तजन धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी कामना करते हैं। परन्तु इनमेंसे धर्म, अर्थ और काम—ये कुरस हैं तथा मोक्ष नीरस है। इसलिये अनन्य भक्त धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष भगवान द्वारा दिये जाने पर भी ग्रहण नहीं करते। श्रीमद्भागवतमें इस विषयको स्पष्ट रूपसे दिखलाया गया है। इसके अतिरिक्त सेव्य-सेवक भावका किस प्रकारसे अति निम्नस्तरसे सर्वोच्चतम अवस्था तक क्रमविकाश होता है, इसका भी श्रीमद्भागवतमें प्रांजल वर्णन है।

जिन सौभाग्यवान पुरुषोंके हृदयमें स्थायी भाव का उदय हो चुका है, वे ही भावुक कहलानेके यथार्थ अधिकारी हैं। स्थायी-भावके साथ विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी—इन चारों रस-सामग्रियोंका मिलन होने पर जिन अप्राकृत रसका उदय होता है, उस रसके द्वारा जिनका हृदय अभिषिक्त हो चुका है, जो लोग प्राकृत भावनाओं—संकल्प-विकल्प आदिके पथका अतिक्रमण कर एक अप्राकृत महाचमत्कार-पूर्ण भूमिकामें उपस्थित

होकर विगुद्ध-सत्वोज्ज्वल हृदयमें अप्राकृत रसका आस्वादनमें पटु हैं, केवल वे रसिक जन ही निगम-कल्पतरुके फल—श्रीमद्भागवतका रसास्वादन कर सकते हैं। इस फलमें गुठली और छिलके आदि त्याग करने योग्य इतर वस्तुएँ नहीं हैं—केवल रस ही रस है। अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान, योग, मिश्रा और विद्वाभक्तिके प्रतिपादक ग्रन्थोंमें नानाप्रकार हेयांश और आवरण होते हैं, जिन्हें अनावश्यक जानकर फेंक दिया जा सकता है। परन्तु श्रीमद्भागवतमें वंसी कोई भी हेयता नहीं है। यह सुनिर्मल सुपक्व और केवल रसस्वरूप है। अधिक क्या, श्रीमद्भागवत साक्षात् अखिलरसामृतसिन्धु कृष्ण ही है। आलयं-लयमभिव्याप्य-अर्थात् मुक्तावस्थामें भी यह भागवत-रस आस्वाद्य है। मुक्त पुरुष ही श्रीमद्भागवतका नित्य आस्वादन किया करते हैं। जो लोग मुक्तशिरोमणि परमहंस वैष्णवों के मुखसे श्रीमद्भागवतका श्रवण न करके व्यवसाय के रूपमें श्रीमद्भागवतका पाठ करनेवाले अनर्थ-युक्त लोगोंके मुखसे श्रवण करते हैं, वे उन व्यवसायी पाठकोंके मुखसे केवल काव्य, साहित्य, अनुस्वार और विसर्ग आदिके बाहरी विचारोंमें ही अटक जाते हैं, श्रीमद्भागवतके अतिपाद्य विषय तक पहुँच नहीं पाते। ऐसे श्रोता जड़ीय विरस या कुरसको ही भ्रान्तिवश 'रस' मानते हैं। जब श्रीशुकदेव आदि की भाँति मुक्त परमहंस पुरुष श्रीमद्भागवत का कोर्तन करें, तथा महाराज परीक्षित जैसे विषयोंसे सर्वथा विरक्त दृढ़ श्रद्धालु श्रोता वहीं हों, श्रीमद्भागवतका रसास्वादन संभव है।

हमलोग प्राकृत सहजिया द्वारा लिखित भ्रमर

गीत और गोपो-गीतकी विवृति आदिका अनुमोदन नहीं करते । परन्तु उनकी यथार्थ व्याख्याका प्रकाश होना भी नितान्त आवश्यक है । 'यह ठीक नहीं'—केवल कहनेसे काम नहीं चलेगा, बल्कि उसके साथ ही 'जो ठीक है'—उसे भी प्रस्तुत करना पड़ेगा ।

श्रीगुरु, श्रीनाम, श्रीमद्भागवत, श्रीराधा-गोविन्द और श्रीगौरसुन्दर—ये सभी अभिन्न तत्त्व हैं । हम काल्पनिक पंचोपासना करके अन्याभिलाषी कर्मी और ज्ञानी न होंगे, बल्कि कृष्णकी पंचोपासना करेंगे—आश्रय जातीय कृष्ण अर्थात् श्रीगुरु-

देवकी उपासना करेंगे, अप्राकृत शब्दावतार नाम-कृष्णकी उपासना करेंगे, भागवत कृष्णकी उपासना करेंगे और गौरकृष्णकी उपासना करेंगे । इस प्रकार हम कृष्णकी पाँच रसोंमें उपासना करेंगे । हम केवलमात्र प्रतिकूलका त्याग करके ही शान्त नहीं हो जावेंगे अथवा केवलमात्र अनुकूलका ग्रहण करके भक्तिको स्तम्भित न करके हम लोग निरन्तर कृष्णानुशीलन करेंगे ।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त
सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

[प्रकरण-प्रस्थान—महाजनोंकी वाणियों एवं उनके ग्रन्थ]

१—महाजनों द्वारा रचित भक्ति-ग्रन्थ आदरणीय क्यों हैं ?

—'शुद्धभक्त महाजनों द्वारा रचित भक्ति ग्रन्थों को समस्त शास्त्रोंका सार जानकर आदर करते हैं।'

—'निवेदन' स. तो. १०।५

२—क्या भक्त महात्मागण मानसिक कल्पनाओं का सहारा लेकर ग्रन्थों की रचना करते हैं ?

वाक्यानां जडजन्यत्वात् शक्ता मे सरस्वती ।

वपनि विमलानन्दविलासस्य चिदात्मनः ॥

तथापि सारजुट्ठत्या समाधिमवलम्ब्य च ।

वलिता भगवद्दार्ता मया बोध्या समाधिना ॥

चिदात्माके विमलानन्द-विलासका वर्णन करने में मेरी सरस्वती असमर्थ है । इसका कारण यह है कि मैं जिन वाक्योंके द्वारा उसका वर्णन करूँगा, वे वाक्यसमूह जड़से उत्पन्न हुए हैं । वाक्यों द्वारा स्पष्ट वर्णन करनेमें समर्थ न होने पर भी मैंने सारजुट्ठ वृत्तिद्वारा समाधिका अवलम्बन करके भगवानकी कथाओंका यथाशक्ति वर्णन किया है । वाक्योंका साधारण अर्थ करनेसे वर्णित विषयकी यथार्थ उपलब्धि नहीं हो सकती । इसीलिये प्रार्थना करता हूँ कि पाठकवर्ग समाधि अवलम्बनपूर्वक इस विषयमें तथ्योंकी उपलब्धि करेंगे । अरुन्धति नामक एक बहुत ही छोटा तारा है । उसको देखने

के लिये पहिले-पहल उसके पासवाले बड़े - बड़े तारोंको देखकर बड़ी बारीकीसे देखने पर इस तारे को देखा जा सकता है। ठीक उसी प्रकार पहिले वाक्योंके स्थूल अर्थको लेकर भी उसके सूक्ष्मसे सूक्ष्म अर्थके द्वारा सूक्ष्म तत्त्वको ग्रहण करना आवश्यक है। युक्तियाँ इस विषयमें सर्वथा असमर्थ हैं। अप्राकृत विषयमें इनकी तनिक भी गति नहीं है। परन्तु आत्म-साक्षात्कार नामक एक और भी सूक्ष्म वृत्ति है; इसे सहज-समाधि भी कहते हैं। मैंने इस सहज-समाधिके द्वारा ही अप्राकृत तत्त्वका वर्णन किया है। पाठकोंसे भी यह प्रार्थना है कि इस सहज-समाधिके सहारे ही मेरेद्वारा लिखे गये अप्राकृत तत्त्वकी उपलब्धि करेंगे।”

३—श्रीचैतन्यशिक्षामृत समस्त शास्त्रोंका सार किस प्रकार है ?

“भली भाँति विवेचना करने पर आप देख सकते हैं कि चैतन्यशिक्षामृत ही समस्त शास्त्रोंका सार है। ऋक्, साम, यजुः और अथर्व वेदमें तथा वेदान्त आदि शास्त्रोंमें निर्गुण तत्त्वोंका प्रतिपादन किया गया है; उन्हीं तत्त्वोंका सार श्रीचैतन्यशिक्षामृतमें पाया जाता है। अट्टारह पुराण, बीस धर्म-शास्त्र, रामायण, महाभारत, षड्-दर्शन और तन्त्रोंमें जो कल्याणकारी सद्-उपदेश पाये जाते हैं, वे सभी तात्त्विक रूपमें शिक्षामृतमें उपलब्ध हैं। विदेशी धर्म-शिक्षाओंमें तथा अपने देशमें प्रचलित धर्मोंमें जो कुछ अच्छे विचार या उपदेश हैं, वे सभी इस ग्रन्थमें प्राप्त होंगे। स्वदेशी और विदेशी किसी

भी धर्मशास्त्रोंमें जो बातें नहीं मिलेगीं, वे भी इस उपादेय ग्रन्थमें उपलब्ध हैं।”

—विवोधन चं. शि.

४—श्रीमद् भक्तिविनोदजीने किसकी प्रेरणासे ‘श्रीभागवतार्कमरीचिमाला’ ग्रन्थका संकलन किया है ?

“यत् कृपया प्रवृत्तोऽहमेतस्मिन् ग्रन्थसंग्रहे।

तं गौरपार्षदं वन्दे दामोदरस्वरूपकम् ॥”

—मङ्गलाचरणम् श्री भा. म.

—‘मैं गौर-पार्षद श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामीकी वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपासे मैं इस ग्रन्थके संकलनमें प्रवृत्त हुआ हूँ।’

५—‘श्रीभागवतार्कमरीचिमाला’ की रचनाके लिए श्रीमहाप्रभुजीने क्या कोई आदेश दिया है ?

‘हाँ, श्रीमन्महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदरके माध्यमसे इसके लिए आज्ञा दी है। एकबार श्रीमद् भागवतके श्लोकोंकी आवृत्ति एवं उनका आस्वादन करते समय श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामीने अन्तःकरणमें उदित होकर मुझे यह आज्ञा प्रदान की कि ‘तुम श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आज्ञाके अनुसार श्रीमद्भागवतके श्लोकोंको सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजनके क्रमसे सजा दो, जिससे भक्ति साधकोंका अत्यन्त उपकार होगा। श्रीमन्महाप्रभुकी इस आज्ञानुसार ही मैंने सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन के क्रमसे श्रीमद्भागवतके श्लोकोंको सजा

करके श्रीभागवतार्कमरीचिमाला नामक ग्रन्थका संकलन किया है ।'

—('उपसंहार' श्रीभागवतार्कमरीचिमाला)

६—क्या अचिन्त्यभेदाभेद - सिद्धान्त-सम्मत गीताका कोई भाष्य उपलब्ध है ?

'श्रीमद्भगवद्गीताकी बहुत सी टीकाएँ और अनुवाद हैं; परन्तु खेदकी बात है कि उनमेंसे अधिकांश अभेद-ब्रह्मवादियोंके द्वारा लिखे गये हैं । विशुद्ध भगवद्भक्तिका प्रतिपादन करनेवाली टीकाएँ या वैसे अनुवाद प्रायः दृष्टिगोचर नहीं होते । शाङ्करभाष्य और आनन्दगिरिकी टीका सर्वथा अभेदवादपूर्ण हैं । श्रीधर स्वामीकी टीका ब्रह्मवादपूर्ण न होने पर भी उसमें साम्प्रदायिक शुद्धाद्वैतवादका गन्ध है । श्रीमधुसूदन सरस्वतीकी टीकामें भक्तिपोषक वाक्योंकी अधिकता होने पर भी उनके अन्तिम भाव और उपदेश-वाक्यसमूह वैसे कल्याणप्रद नहीं हैं । श्रीरामानुजाचार्यका गीता-भाष्य सम्पूर्णरूपसे भक्तिसम्मत होने पर भा

उसमें श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभुजीके अचिन्त्यभेदाभेद-शिक्षा प्रकाशित नहीं रहनेके कारण वह विशुद्ध प्रेम भक्तिके रसास्वादकोंके लिये उतना आनन्दप्रद नहीं जितना कि होना चाहिए । इसीलिये मैंने अत्यधिक प्रयाससे श्रीचैतन्यमहाप्रभुके अनुगत महा-महोपाध्याय श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती महाशयकी गीता-टीकाके आधारपर 'रसिकरंजन' नामक भक्तिपूर्ण अनुवाद किया है । श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षाके अनुरूप श्रीबलदेव विद्याभूषणजीने एक गीताका भाष्य लिखा है। श्रीबलदेवकी टीका विचार-पूर्ण है; परन्तु श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीकी टीका विचारपूर्ण होनेके साथ-साथ प्रीति-रससे भी परिपूर्ण है । विशेषतः श्रीचक्रवर्तीजीकी टीकाका सम्मान और प्रचार सर्वत्र है । श्रीचक्रवर्ती महाशयके विचार सरल-सरस हैं और इनकी संस्कृत भाषा भी प्राञ्जल है ।'

(गी. र. स. भा.)

—जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

(श्रीकृष्ण-सन्दर्भ-२५)

शास्त्रीय प्रमाणोंके द्वारा यह पहले ही दिख-
लाया जा चुका है कि गोप-गोपियाँ श्रीकृष्णके
नित्य-परिकर हैं और वे साधन-मुक्त या नित्य-मुक्त
दोनों प्रकारके मुक्त जीव-श्रेणीके अन्तर्गत नहीं हैं।
कोई भी साधक जीव किसी भी साधनाके द्वारा
कभी भी नन्द-यशोदा, सुबल-श्रीदाम या ललिता-
विशाखा आदि नहीं हो सकता। यदि कोई यह प्रश्न
करे कि सुतपा और पृथ्विनने कठोर तपस्या करके
श्रीहरिको पुत्रके रूपमें प्राप्त करनेका वर माँगा था
और वे ही दूसरे जन्ममें वसुदेव और देवकी हुए
थे। और इसी प्रकार द्रोण और धराने भी तपस्या-
द्वारा वरदान प्राप्त करके दूसरे जन्ममें नन्द-यशोदा
होकर कृष्णको पुत्ररूपमें पाया था। इसलिये इससे
क्या यह प्रमाणित नहीं होता कि श्रीसुतपा-पृथ्विन
और द्रोण-धराकी तरह दूसरे जीव भी नन्द-यशोदा
आदि हो सकते हैं ?

उत्तर यह है कि नहीं। जगत्-कल्याणके लिये
स्वयं भगवान श्रीकृष्णको जगत्में आविर्भूत कराने
के लिये श्रीकृष्णकी इच्छासे ही नित्य-परिकर
श्रीवसुदेव और देवकीजीने अपने-अपने एक-एक
अंशसे एक-एक जीवमें प्रविष्ट होकर सुतपा और
पृथ्विनके रूपमें कठोर तपस्या की थी। जब-जब
भगवान जगत्में आविर्भूत होना चाहते हैं, तब-तब
इसी प्रकार कोई न कोई बहाना (कारण) बना

कर ही अवतीर्ण होते हैं। जब उनके वरदान पूरा
करनेके लिये स्वयं-भगवान श्रीकृष्ण अपने नित्य
परिकरोंके साथ आविर्भूत हुए, उस समय सुतपा
और पृथ्विनजीने श्रीवसुदेव और देवकीके नित्य-
शरीरमें प्रविष्ट होकर वात्सल्य-रसका आस्वादन
किया था, वे ही वसुदेव और देवकी नहीं बन गये
थे। उसी प्रकार ब्रजराज नन्दजी तथा ब्रजेश्वरी
यशोदाने भी द्रोण और धरामें अपने-अपने अंशसे
प्रविष्ट होकर भगवानको पुत्ररूपमें पानेके लिये
तपस्या की थी। वास्तवमें श्रीकृष्ण श्रीनन्द-यशोदा
के नित्य पुत्र हैं, किन्तु भगवानकी इच्छासे भगव-
दाविर्भावके कारण-रूपमें उन्होंने एक तरहसे जगत्
को दिखलानेके लिये ही वैसी तपस्या की थी।
श्रीमद्भागवतमें श्रीयशोदाजीकी महिमा इस प्रकार
गायी गयी है—

त्रय्या चोपनिषद्भिर्द्वेष सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ।

उपगीयमानमाहात्म्यं हरि सामन्यतात्मजम् ॥

(भा० १०।८।४५)

—‘वेद, उपनिषद, सांख्ययोग तथा पंचरात्र
आदि शास्त्र जिनकी महिमाका सदा-सर्वदा गान
करते-करते अघाते नहीं, उन स्वयं-भगवान श्रीकृष्ण
को ब्रजेश्वरी श्रीयशोदाजी अपनी गर्भजात संतान
समझती हैं।’ इस श्लोक द्वारा यह सहज ही जाना
जा सकता है कि श्रीयशोदाजी पर श्रीकृष्णकी
कितनी अधिक कृपा है।

नन्वः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् ।

यशोदा च महाभागा पपी यस्याः स्तनं हरिः ॥

(भा० १०।८।४६)

श्रीयशोदाजीकी ऐसी अपूर्व महिमा श्रवण कर परीक्षित महाराजजी बड़े विस्मित हुए और उन्होंने श्रीशुकदेव गोस्वामीजीसे बड़ी ही नम्रतासे पूछा— ब्रह्मन् ! आप तत्त्ववेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, आप सर्वज्ञ हैं । आप कृपा करके मुझे बतलाइये कि महाराज नन्दजी ने ऐसा कौन-सा शुभ कर्म किया था जिससे सनातन परम ब्रह्म श्रीकृष्णने उनके घर पुत्रके रूप में आविर्भूत होकर विविध प्रकारकी मनोहारी ऋद्धाएँ की थीं तथा महासौभाग्यवती श्रीमती यशोदाजी ने भी ऐसा कौन-सा श्रेय अनुष्ठान किया था—कौन-सा जप, तप, व्रत, दान, तीर्थ-स्नान या कल्याणकारी महदनुष्ठान किया था जिससे उन स्वयं-भगवान श्रीकृष्णने श्रीमुखसे उनका स्तन-पान किया था ?

पितरो नान्वबिन्देतां कृष्णोदाराभंकेहितम् ।

गायन्त्यथापि कवयो यत्लोकशमलापहम् ॥

(भा० १०।८।४७)

—श्रीकृष्णके माता-पिता (देवकी और वसुदेव) श्रीकृष्णकी जिस उदार और परम उपादेय बाल्य-लीलाओंका आस्वादन नहीं कर सके, उन्हीं बाल-लीलाओंका श्रीनन्द महाराज और श्रीमती यशोदाजी ने प्रचुर रूपमें आस्वादन किया । इसका क्या कारण है ? श्रीनन्द-यशोदाको ऐसा दुर्लभ सु-सौभाग्य क्योंकर प्राप्त हुआ ?

उपर्युक्त श्लोकके 'पितरो नान्वबिन्देतां'—पदसे

श्रोपरीक्षित महाराजका गूढ़ अभिप्राय यह है कि श्रीकृष्णचन्द्रजी जिनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उनके घरमें आविर्भूत हुए, उन श्रीवसुदेव-देवकीजीको उन भगवान श्रीकृष्णचन्द्रकी मनोहर बाल्यऋद्धाओं के आस्वादनका सौभाग्य न मिलकर श्रीनन्द-यशोदा को कैसे प्राप्त हो गया ?

इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—वसुधैव कुटुम्बकम्। उत्तम श्रीद्रोण और धराने अपनी कठोर तपस्यासे ब्रह्माजीको प्रसन्न करके उनसे यह वरदान माँगा था कि जब हम लोग पृथ्वीमें पैदा हों, तो सर्वेश्वरेश्वर श्रीहरिके चरणारविन्दोंमें हमारी अनन्या भक्ति हो । लोक-पितामह ब्रह्माजीने 'एवमस्तु' कहकर उनकी अभिलाषा पूर्ण होनेका वरदान दिया था । वे ही महायशाः द्रोण वसु और धराजी द्वाराके अन्तमें व्रजमें प्रसिद्ध श्रीनन्द महाराज और श्रीयशोदामें प्रविष्ट होकर अवतारण हुए ।

ततो भक्तिभंगवति पुत्रीभूते जनार्दने ।

दम्पत्यो नितरामासीद् गोपगोपीषु भारते ॥

(भा० १०।८।४९)

हे परीक्षितजी ! भगवान् जनार्दन उनके पुत्रके रूपमें उपस्थित होनेपर इस दम्पतिकी उनके प्रति अनुपम भक्ति हुई थी ।

'पुत्रीभूत'—श्लोकमें 'पुत्रीभूत' शब्द लक्ष्य करने योग्य है । 'पुत्र'-शब्दके आगे 'ब्वी' प्रत्यय लगानेसे 'पुत्री' पद निष्पन्न होता है । उसका अर्थ है—जो कभी भी दूसरेका पुत्र नहीं होते उन-श्रीकृष्णके प्रति ब्रजराज और ब्रजेश्वरीका पुत्रभाव

उत्पन्न हुआ था। क्योंकि ऐसा नियम है कि किसी विशेष प्रकारकी भक्तिके द्वारा ही श्रीकृष्णका आविर्भाव हुआ करता है। वह विशेष-भक्ति है—वात्सल्यरसकी भक्ति। इसी वात्सल्य-प्रेमके वशीभूत होकर ही श्रीकृष्ण पुत्रके रूपमें आविर्भूत होते हैं। परन्तु वे किसीके देहसे—गर्भसे निकलकर कदापि पुत्र नहीं होते; अर्थात् भगवान किसीके गर्भसे पैदा नहीं होते। यदि वे गर्भसे निकलकर किसीके पुत्र होते, तो हिरण्यकशिपुकी सभा-गृहके खंभेसे निकलनेवाले भगवान नृसिंहदेवका पिता वह खंभा ही कहा जाता; अर्थात् नृसिंह भगवान् खंभके पुत्र कहलाते। उसी प्रकार श्रीवराहदेव ब्रह्माजीकी नाकसे आविर्भूत होनेसे ब्रह्माजीके पुत्र कहलाते; अर्थात् ब्रह्माजी ही उनके पिता कहलाते। परन्तु ऐसा नहीं कहा जाता। यदि यह कहो कि श्रीनृसिंहदेव और श्रीवराहदेव गर्भसे पैदा नहीं हुए, इसलिये उनके पुत्र नहीं हो सकते; किन्तु जो गर्भमें प्रवेश करते हैं, वे ही पुत्र कहलाते हैं। परन्तु ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि श्रीकृष्णने परीक्षितकी माता उत्तराके गर्भमें प्रवेश किया था, फिर भी कृष्ण उत्तराके पुत्र हैं या उत्तरा कृष्णकी जननी हैं—ऐसा कोई भी नहीं कहता।

अस्तु, वात्सल्य-प्रेम ही पुत्ररूपमें आविर्भावका हेतु है। यह वात्सल्य-प्रेम ऐश्वर्य-ज्ञानादिसे सर्वथा रहित—शुद्ध रूपमें नन्द और यशोदामें उदित हुआ था। इसलिये गर्भमें प्रवेशके बिना भी श्रीकृष्ण श्रीनन्द-यशोदाके पुत्रके रूपमें प्रसिद्ध हैं।

'नन्दस्त्वात्मज उत्पन्न' जाताह्लादो महामनाः ।'

(भा० १०।१।१)

इस श्लोकमें यह बतलाया गया है कि आत्मज (पुत्र) के उत्पन्न होने पर महामना नन्दजी परमानन्दको प्राप्त हुए। यहाँ 'आत्मज' शब्दके द्वारा श्रीकृष्ण ही नन्दनन्दन हैं—यह स्पष्ट व्यक्त किया गया है। अष्टादशाक्षर मन्त्रके ऋष्यादि प्रसङ्गमें भी 'सकल लोक मंगल नन्दतनयो देवता'—इस उक्तिके द्वारा श्रीकृष्णका नन्दतनयत्व व्यक्त किया है। किन्तु कहीं भी श्रीनृसिंहदेवजी खंभेके पुत्र हैं या श्रीवराहदेवजी ब्रह्माके पुत्र हैं—ऐसी बात न कहीं सुनी गई और न किसी शास्त्रमें वर्णित है।

श्रीकृष्ण वसुदेव-देवकीके पुत्ररूपसे आविर्भूत होने पर भी उनका आविर्भाव प्राकृत जीवकी तरह नहीं हुआ। प्राकृत जीव वीर्य या धातुमें प्रवेश कर जन्म ग्रहण करता है। किन्तु श्रीकृष्ण वैसे जन्म ग्रहण नहीं करते। सच्चिदानन्दविग्रह भगवान श्रीकृष्ण वसुदेव-देवकीके अप्राकृत मनमें आविष्ट होकर आविर्भूत हुए थे। इसलिए कहा गया है—

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयकूरः ।

आविवेशांशभागेन मन आनकनुन्बुभेः ॥

(भा० १०।२।१६)

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी ।

दधार सर्वात्मकमात्मनूतं काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः ॥

(भा० १०।२।१८)

विश्वात्मा और भक्तोंके अभयप्रदाता भगवान श्रीकृष्ण सबसे पहले श्रीवसुदेवजीके अप्राकृत मनमें आविष्ट हुए। उसके बाद वसुदेवद्वारा समाहित (ग्रहीत) अच्युतांशको श्रीदेवकीजीने धारण किया। पूर्व दिशा जिस प्रकार चन्द्रको धारण करता है,

उसी प्रकार देवकीजीने भी मनद्वारा सर्वात्मक आत्मभूत श्रीहरिको धारण किया था। बाहर प्रकट होनेके पूर्व मनमें श्रीभगवानके आविष्ट होनेकी जो बात कही गई है, वह केवल श्रीदेवकी-वसुदेव में ही घटित हुई थी—ऐसी बात नहीं है। सर्वत्र ही ऐसा नियम देखा जाता है। श्रीनारद-ध्रुव-प्रह्लादादि महाभागवतोंके सम्बन्धमें भी ऐसा ही देखा जाता है। पहले उनके मनमें भगवान आविर्भूत हुए थे। पश्चात् वे बाहरमें दृष्टिगोचर हुए। भगवान जिस प्रकार नारदादिके प्रेमके विषय हैं, उसी प्रकार वसुदेव-देवकी और ब्रजराज-दम्पतिके भी प्रेमके विषय हैं; इसलिए भगवानके साक्षात् आविर्भावके बहुत पहले ही उनके मनमें भगवान श्रीकृष्णका आविर्भाव हो चुका था—ऐसा समझना चाहिए। ब्रह्माजी से वर-प्रार्थनाके समय द्रोण और धराके हृदयोंमें भगवान श्रीकृष्णकी स्फूर्ति हो रही थी। इसलिए वे दोनों कोई दूसरा वर न माँगकर श्रीकृष्णके प्रति भक्ति ही प्रार्थना करने लगे। अतएव प्रेम-विशेष ही श्रीकृष्णके आविर्भावका कारण है—प्रकटलीला के सम्बन्धमें यह सिद्धान्त स्थिर हुआ। अब अप्रकट लीलामें भी ब्रजराज-दम्पतिका नित्यसिद्धत्व दिखलाया जा रहा है।

जिस प्रकार श्रीलक्ष्मीनारायणका अनादि काल से ही आदि-रससिद्ध दाम्पत्य वर्तमान है, उसी प्रकार ब्रजराज-दम्पतिका भी श्रीकृष्णमें अनादि कालसे ही वात्सल्य-रससिद्ध पितृ-पुत्रभाव वर्तमान है। इसलिए 'पुत्रीभूत' शब्दके स्थान पर कहीं-कहीं 'पुत्रभूतः' शब्द देखा जाता है; अर्थात् श्रीकृष्ण

चिरकाल ही ब्रजराज-दम्पतिके पुत्ररूपमें वर्तमान हैं। श्रीउद्धवजीने नन्द महाराजसे कहा था—

नहस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियोऽवास्त्यमानिनः ।
नोत्तमो नाधमो वापि समानस्यासमोऽपि वा ॥
न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ।
नात्मीयो न परश्चापि न वेहो जन्म एव च ॥
(भा० १०।४६।३७-३८)

श्रीकृष्ण निरभिमान हैं। इसलिए उनकी दृष्टि में सभी एक समान हैं। न तो कोई उनका प्रिय है, न अप्रिय; न तो उत्तम है, न अधम; और न तो कोई समान है और न असमान; उनके पिता-माता, भार्या, पुत्र, आत्मीय या अनात्मीय, देह या जन्मादि-कुछ भी नहीं हैं।

युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान् हरिः ।
सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता-माता स ईश्वरः ॥
(भा० १०।४६।४२)

ये भगवान् हरि केवल आप लोगोंके ही पुत्र नहीं हैं। वे ईश्वर हैं तथा सभीके ही पुत्र, आत्मा और पिता-माता स्वरूप हैं। इस श्लोकका गौण अर्थ है—विरहातुर ब्रजराजदम्पतिके हृदयमें श्रीकृष्णका अपने विषयमें तात्कालिक उदासीनता प्रकाश कर उन्हें किसी प्रकार सान्त्वना देना। परन्तु मुख्य या वास्तविक अर्थ ऐसा है—प्रिया-प्रिय, माता-पिता आदिसे रहित भगवान् हरि श्रीकृष्ण रूपमें विशेष प्रकारसे आप लोगोंके ही पुत्र हैं, सभीके नहीं; वे ईश्वर रूपसे सबके अन्तर्यामी होनेसे सभीके पुत्र हैं। किन्तु ऐसा सम्बन्ध माया-

मय है। अतएव उस सम्बन्धके प्रति हमारा आदर नहीं है। आप लोगोंके पुत्ररूपसे श्रीकृष्ण मुमुक्षु, मुक्त और भक्तजनोंके लिए प्रेमस्वरूप हैं। अतएव ऐसे सम्बन्धके प्रति हमारा आदर है। नन्द-यशोदा-का श्रीकृष्णके प्रति परमानुराग दर्शन कर श्रीमान् उद्धवजीने पहले ही कहा था—

पुत्रां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानव ।

नारायणोऽखिलगुरो यत् कृता मतिरीदृशी ॥

(भा० १०।४६।३०)

आप लोगोंने जगतमें देहधारियोंके बीच आविर्भूत होकर उन्हें गौरवान्वित किया है। आप लोग ही सब प्रकारसे प्रशंसा करने योग्य हैं, क्योंकि अखिलगुरु नारायण (श्रीकृष्ण) के प्रति आप लोगोंका ऐसा भाव है।

श्रीकृष्ण और बलरामजी नन्द महाराजसे कहते हैं—

स पिता सा च जननी यो पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ।

शिशून् बन्धुभिरस्तृष्टानकल्पः पोषरक्षणे ॥

(भा० १०।४५।२२)

जिन्हें पालन-पोषण न कर सकनेके कारण माता-पिता या स्वजन सम्बन्धियोंने त्याग दिया है, उन बालकोंको जो लोग अपने पुत्रके समान लाड़-प्यार से पालते हैं, वे ही वास्तवमें उनके माता-पिता हैं। यह वाक्य नन्द महाराजको सान्त्वना देनेके लिए कहा गया है और केवल बलरामजीके सम्बन्धमें ही कहा गया है। कृष्णके सम्बन्धमें यह बात नहीं कही गयी है। इसलिए उक्त श्लोकके

द्वारा कृष्णका पर-पुत्रत्व कदापि नहीं सूचित होता। बल्कि कृष्ण आगे स्वयं नन्द महाराजको पिता सम्बोधन करते हुए कहते हैं—

यात यूयं यजं तात वयंच स्नेह-दुःखितान् ।

जातीन् वो ब्रुधुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥

(भा० १०।४५।२३)

हे तात ! आप ब्रज गमन करें। सुहृदगणों (बन्धु बान्धवों) का सुख विधान करके शीघ्र ही हम लोग स्नेह-दुःखित जातिस्वरूप आप लोगोंका दर्शन करने आयेंगे। अर्थात् आप लोगोंका दर्शन कर आप लोगोंके निकट ही वास करेंगे।

ब्रजवासियोंकी भक्तिके वशीभूत होकर ही श्रीकृष्णने ब्रजमें विहार किया था। अतएव श्रीकृष्णको पुत्ररूपसे पानेके लिए ब्रजराज-दम्पतिको ब्रह्माजीका वर देना—यह यथार्थ कारण नहीं है। इसलिए इस बातको मनमें रखकर ही श्रीशुकदेवजी ने ब्रह्माजीसे भी उनका सौभाग्यातिशय दिखलाने के लिए ब्रह्माके वरदान प्रसङ्गके तुरन्त पश्चात् ही दामबन्धन-लीलाका वर्णन आरम्भ किया। दामबन्धन-लीलाके द्वारा यह विदित होता है कि श्रीकृष्ण स्वयं भगवान हैं। वे परम स्वतंत्र और स्वाधीन हैं। ब्रह्माजी और शिवजी तो दूर रहें, लक्ष्मीजी भी उन्हें वशीभूत न कर सकीं। परन्तु अपने अनन्य वात्सल्य-प्रेमके द्वारा माँ यशोदाने जगतके सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्ता, सबके स्वामी श्रीकृष्णको सम्पूर्ण रूपसे वशीभूत कर लिया। अतएव यशोदाजी ब्रह्मा शिव और लक्ष्मीजीसे भी अधिक सौभाग्यशाली

और श्रेष्ठ थीं। इसलिए ब्रह्माजी यशोदाजीको वरदान करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं।

नेमं विरिचो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया ।
प्रसावं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात् ॥
(भा० १०।६।२०)

इसलिए प्रेम ही भगवानको बाँधनेका एकमात्र कारण है। ब्रह्माजी श्रीनारायणके नाभिकमलमें रहकर बहुत काल तक चिन्ता करके भी अपना कर्तव्य-विषय निर्धारित न कर सके। उसके पश्चात् श्रीहरिसे मंत्र और उपदेश प्राप्त कर कर्तव्य विषयका ज्ञान प्राप्त किया। श्रीब्रह्माजी आदिदेवके प्रथम शिष्य होनेके कारण आदर्श वैष्णव हैं। परन्तु उनकी अपेक्षा शम्भु (शिव) का भक्त्याधिक्यके कारण अधिक माहात्म्य है। इसलिए “वैष्णवानां यथा शम्भु” कहकर भागवतके बारहवें स्कन्धमें शिव की श्रेष्ठ वैष्णवता दिखलाई गई है। इन दोनों की भी अपेक्षा श्रीलक्ष्मीजीकी महिमा अधिक है, क्योंकि वे नारायणके वक्षःस्थल पर सदा विलास करती हैं। किन्तु वे भी ब्रजेश्वरी यशोदाकी तरह भगवत् प्रसाद प्राप्त न कर सकीं।

द्रोण और धरा यदि साधारण देवतामात्र होते, तब उनके लिए ब्रह्मादिके भी सुदुर्लभ—पुत्ररूपमें श्रीकृष्णको पानेका सौभाग्य पाना असम्भव था। श्रीकृष्णके महाभक्तोंके लिए जो पुत्रभाव दुर्लभ है, उसे वे ब्रह्माजी भी यशोदाजी की कृपासे प्राप्त करने के लिए तरसते हैं। वह पुत्रभाव नन्द-यशोदाका नित्यसिद्ध भाव है। ब्रह्माजीके वरदानसे उन्होंने प्राप्त किया था—ऐसी बात नहीं है। “ब्रह्माजी भी

ऐसा प्रसाद प्राप्त न कर सके”—इस वाक्यके द्वारा इस बातकी पुष्टि होती है। स्वयं उस प्रसादसे वंचित ब्रह्माजीके लिए ऐसा वरदान देना भी असंभव है। इसे ब्रह्माजीने “तद्भूरिभाग्यं” श्लोक द्वारा व्यक्त किया है। अतएव जिस प्रकार श्रीकृष्णकी स्वयं भगवत्ताका कोई कारण नहीं है, उसी प्रकार नन्द-यशोदाका भी श्रीकृष्णको पुत्ररूपसे प्राप्त करनेका कोई कारण नहीं है। यशोदानन्दनरूपसे ही श्रीकृष्ण स्वयं भगवान हैं—यह बात चिरकालसे ही प्रसिद्ध है। श्रीभगवानकी तरह लीला करनेके लिए द्रोण और धरारूप अंशरूपसे अवतीर्ण हुए थे। गोकुलमें श्रीब्रजराज-दम्पति श्रीकृष्ण-प्रेमके परमाश्रय स्वरूप हैं।

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।
जनितान्चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥
(भा० १०।६।२१)

जिस प्रकार भक्तिमान व्यक्तियोंके लिए भगवान् गोपिकासुत (श्रीकृष्ण) सहज-प्राप्य हैं, देहाभिमानी व्यक्तियोंके लिए या देहाभिमान निवृत्त ज्ञानियोंके लिए वैसे नहीं; इसलिए ‘गोपिकासुत’—इस वाक्यके द्वारा श्रीकृष्ण गोपिका (यशोदा) के लिए सहज और सुखपूर्वक प्राप्य हैं—यह बात स्पष्ट ही प्रमाणित है। मूलश्लोकके ‘गोपिकासुत’ शब्दके द्वारा यह बात निश्चित होती है कि श्रीकृष्ण वात्सल्य-प्रेमकी प्रतिभूति यशोदाके ही नित्यपुत्र हैं, दूसरे और किसीके नहीं। इस शब्द द्वारा उनके नित्य यशोदानन्दनत्व पर कोई व्याघात नहीं होता; अतएव श्रीकृष्ण नित्यकाल ही यशोदानन्दन हैं।
—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रीती महाराज

श्रीमद्भागवतमें साधुर्यभाव

(वर्ष १३, संख्या १०-११, पृष्ठ २२२ से आगे)

श्रीकृष्ण-रस-रसिका विरहिणी गोपियाँ श्रीकृष्णके परम सखा उद्धवको चारों ओरसे घेरकर बैठी हैं। भ्रमरको सम्बोधित करती हुईं श्रीकृष्ण और उद्धवपर व्यङ्ग्य कस रही हैं। व्रजरमणियोंकी चित्तवृत्ति सब प्रकारसे मुकुन्दमें ही लीन है; उनकी रसना उनका गुणगान करती है, कर्ण प्रियतमके चरित्रको सुननेमें ही सार्थकता मानते हैं, उनके जीवनका चरम लक्ष्य व्रजकिशोरके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। वे यदि प्रशंसा-स्तुति करती हैं, तो व्रजराजकी; उलाहना और व्यङ्ग्योंका बौछार करती हैं, तो उन्हींपर; उसीसे उनकी प्रज्वलित विरहाग्नि शान्त होती है।

एक गोपी कहने लगी—जैसे कृष्णसार मृगोंकी पत्नियाँ भोली-भाली हरिणियाँ व्याधके सुमधुर गानसे आकृष्ट होकर उसके जालमें फँसकर मारी जाती हैं, वैसे ही हम भोली-भाली गोपियाँ भी छलिया श्रीकृष्णकी कपटभरी मीठी-मीठी बातोंमें आकर उन्हें सत्य मान बैठीं और उनके नखस्पर्शसे होनेवाली काम-व्याधिका बारम्बार अनुभव करती रहीं। इसलिए कृष्णके दूत भीरे! अब इस विषयकी तू अधिक चर्चा न कर; यदि चर्चा करनी है, तो दूसरे विषयकी कर। और भी कहने लगीं—

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं
वरय किमगुण्ये माननीयोऽसि मेऽङ्ग ।

नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपादवं
सततमुरसि सौम्य श्रीबंधूः साकमास्ते ॥
अपि वत मधुपुर्यामावंपुत्रोऽपुनाऽऽस्ते
स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ।
क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्वंधास्यत् कदा नु ॥

(भा. १०।४।२०, २१)

प्रियतमके प्यारे सखा! ऐसा प्रतीत होता है कि तुम उधर एकबार जाकर फिर लौट आये हो। अबश्य ही हमारे प्रियतमने हमें मनानेके लिए तुम्हें यहाँ भेजा होगा। हे भ्रमर! तुम सब प्रकारसे माननीय हो; कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है? हमसे जो चाहो, सो माँगो। अबच्छा, तुम सब बतलाओ, क्या तुम हमें मधुपुरीमें प्रियतमके पास ले चलना चाहते हो? अजी, उनके पास जाकर लौटना अत्यन्त कठिन है। हम तो उनके पास पहुँच चुकी हैं। परन्तु तुम हमें वहाँ ले जाकर करोगे क्या? प्यारे भ्रमर! उनके साथ उनके वक्षःस्थलपर तो उनकी प्यारी पत्नी लक्ष्मीजी सदा निवास करती हैं। तब वहाँ हमारा निर्वाह कैसे होगा?

अबच्छा, हमारे प्यारेके प्रियतम दूत मधुकर! हमें यह तो कृपा कर बताओ कि आर्यपुत्र नन्दनन्दन श्रीकृष्ण गुरुकुलसे लौटकर मधुपुरीमें अब सुखसे तो हैं न? क्या वे कभी नन्द बाबा, यशोदा महा-

रानी, यहाँके गृह, सगे-सम्बन्धी और ग्वालबालोंको भी याद करते हैं ? और हम दासियोंकी भी कोई बात कभी चलाते हैं ? प्यारे भ्रमर ! हमें यह भी बतलाओ कि कभी वे अपनी अग्ररके समान दिव्य सुगन्धयुक्त भुजाको हमारे सिर पर धरेंगे ? क्या हमारे जीवनमें कभी ऐसा शुभ अवसर भी आयेगा ? ऐसी बातें गोपियाँ बहुत समय तक करती रहीं ।

जब गोपियोंको इस प्रकार श्रीकृष्णके दर्शनके के लिए अत्यन्त उत्सुक और व्याकुल देखा, तब उद्धवजीने उन्हें उनके प्रियतमका सन्देश सुनाकर सान्त्वना देनेका निश्चय किया । पहले गोपियोंकी जीवनकी सार्थकता बर्णन कर पश्चात् उनके द्वारा आचरित भक्तिकी महत्ता सिद्ध की—

अहो पूर्यं मम पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ।

वासुदेवे भगवति यासामित्यपितं मनः ॥

दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ।

श्रेयोनिविविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥

(भा. १०।४७।२३, २४)

हे गोपियों ! तुम लोग कृतकृत्य हो, तुम्हारा जीवन सार्थक है । हे देवियों ! तुम सारे संसारकी पूज्या हो, क्योंकि तुम लोगोंने इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको अपना हृदय, अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया ।

दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन, ध्यान-धारणा-समाधि और अन्यान्य शुभ कर्मोंके द्वारा (वैधी भक्तिके अनुष्ठानों द्वारा) भगवान् श्रीकृष्णके

प्रति जीवोंकी भक्ति (प्रेमा भक्ति) का उदय होता है ।

तुम लोग परम सौभाग्यशालिनी और धन्य हो, जो तुम लोगोंने परम पवित्रकीर्ति श्रीकृष्णकी सर्वोत्तम प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त की है, जो तप-परायण ऋषि-मुनियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है ।

विष्ट्या पुत्रान् पतीन् स्वजनान् भवनानि च ।

हित्वा वृणीत धूर्यं यत् कृष्णार्थं पुरुषं परम् ॥

सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोलजे ।

विरहेण महाभागा महान् मेऽनुग्रहः कृतः ॥

श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः ।

यमादायागतो भद्रा अहं भूतं रहस्करः ॥

(भा. १०।४७।२६, २७-२८)

वास्तविक रूपसे देखा जाय तो कितने सौभाग्य की बात है कि तुम लोगोंने अपने पुत्र, पति, देह, स्वजन, गृह आदिका त्याग कर सबके परम पति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको वरण कर लिया है ।

हे महाभाग्यवती गोपियों ! भगवान् श्रीकृष्णके वियोगमें ऐसा भगवत् प्रेम प्रदर्शन कर आप लोग मुझपर अनुग्रह कर रही हैं । क्योंकि आप लोगोंने ही श्रीकृष्णके प्रति ऐकान्तिक भक्ति प्राप्त की है ।

हे भाग्यवतियों ! मैं प्रभु श्रीकृष्णका गोपनीय कार्य करनेवाला दूत हूँ । तुम लोगोंके प्रियतम श्रीकृष्णद्वारा तुम लोगोंको सुख देनेके लिये जो प्रिय सन्देश भेजा गया है, उसे मैं ले आया हूँ । आप लोग प्रीतिपूर्वक उसे सुनें—

भवतीनां विद्योगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् ।
यथा भूतानि भूतेषु खं वाद्यग्निर्जलं महो ।
तथाहं च मनः प्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥

(भा. १०।४७।२६)

मैं सबका उपादान कारण हूँ, सबका आत्मा हूँ, सबमें अनुगत हूँ । इसलिए मुझसे कदापि तुम लोगोंका वियोग नहीं हो सकता । क्योंकि आत्माके आत्मारूपमें मैं तुम्हारे पास नित्य निवास करता हूँ। जैसे संसारके सभी भौतिक पदार्थोंमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, वैसे ही मैं भी तुम्हारे मन, प्राण, पंचभूत, इन्द्रियों और इन्द्रियोंके विषयोंके आश्रयके रूपमें उनमें विद्यमान हूँ ।

मैं ही अपनी मायाशक्तिके द्वारा अपने ही अन्दर भूत, इन्द्रिय और उनके विषयोंका सृजन, पालन और संहार अपने-आप करता हूँ । आत्मा—माया और मायाके कार्यसे पृथक् है । वह ज्ञान-स्वरूप और गुणातीत है; अर्थात् कोई भी गुण उसका स्पर्श नहीं कर पाते । मायाकी तीन वृत्तियाँ हैं—सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत । इन तीनों मायिक वृत्तियोंके द्वारा वही आत्मा कभी प्राज्ञ, तो कभी तैजस और कभी विश्वरूपसे प्रतीत होता है । परन्तु स्वभावतः वह वैसा स्वरूपवाला नहीं है ।

जिस प्रकार कोई जगा हुआ व्यक्ति स्वप्नके विषयोंको मिथ्या समझता है, उसी प्रकार जिस मनके द्वारा शब्द आदि विषय-समूह अनुभूत और इन्द्रियग्राह्य हुआ करते हैं, उस मनका भी सावधानी से सर्व प्रकारके विषयोंसे निरोध करना चाहिए ।

जिस प्रकार सभी नदियोंकी सीमा समुद्रतक निर्दिष्ट है अर्थात् सभी नदियाँ समुद्र तक जाती हैं, उसी प्रकार विवेकी पुरुषोंका वेदाभ्यास, योग-साधन, सांख्य-ज्ञान, संन्यास, स्वधर्म, इन्द्रिय-दमन और सत्य आदि समस्त धर्म इस मन-निरोध तक पहुँच कर समाप्त हो जाते हैं; अर्थात् ये सभी मन-निरोधके लिये ही होते हैं ।

यत्त्वहं भवतीनां वं दूरे वलं प्रियो दृशाम् ।
मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥
यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वतंते ।
स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षिणोचरे ॥
मत्प्रावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ।
अनुस्मरन्त्वो मां नित्यमचिरान्माप्नुष्यथ ॥

(श्रीमद्भा. १०।४७।३४-३६)

गोपियों ! मैं तुम्हारा जीवन-सर्वस्व हूँ । तुम्हारे नेत्रोंके लिये प्यारा हूँ । किन्तु मैं जो तुमसे इतना दूर हूँ, उसका यही कारण है कि तुम लोग निरन्तर मेरा ध्यान कर सकोगी और प्रेमको बढ़ा सकोगी । शरीरसे दूर रहनेपर भी मनसे तुम लोग मेरी उपस्थिति अनुभव करना और अपने मनको मेरे पास ही रखना ।

क्योंकि यह बात लोकप्रसिद्ध है कि प्रेमिकाओं का चित्त जैसा अपने दूरदेश स्थित प्रियतमपर निश्चल भावसे लगा रहता है, वैसा पासमें रहने-वाले प्रियतममें उतने गाढ़रूपसे नहीं लगता ।

अशेष वृत्तियोंसे रहित सम्पूर्ण मनको मुझमें लगाकर जब तुम लोग मेरा सर्वक्षण अनुस्मरण

करोगी, तब शीघ्र ही तुम लोग मुझे सदा-सर्वदाके लिये प्राप्त करोगी ।

हे कल्याणियों ! तुम्हें याद है कि मेरे साथ वृन्दावनमें शारदीया पूर्णिमाकी रातमें रासविहार करते समय कुछ गोपियाँ स्वजनोंद्वारा रोकी जानेके कारण उस विहारमें सम्मिलित नहीं हो सकी थीं-- ब्रजमें ही रह गई थीं । वे गोपियाँ मेरी लीलाओंका स्मरण करते-करते मुझे प्राप्त हो गई थीं । अतएव तुम्हें निराश होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, धैर्य रखो ।

गोपियोंने उद्धवद्वारा कहे गये श्रीकृष्ण-प्रेरित सन्देशको अत्यन्त प्रेमाविष्ट तथा अनुरागयुक्त होकर सुना । उन्हें परमानन्द प्राप्त हुआ । उस सन्देशको सुनकर उन्हें श्रीकृष्णके स्वरूप और उनकी प्रत्येक लीलाओंका स्मरण होने लगा । वे प्रेमाविष्ट होकर गद्गद् स्वरसे ऐसा कहने लगीं—

विष्ण्वाहितो हतः कंसो घट्टनां सानुगोऽघकृत् ।
विष्ण्वाऽऽर्हं लंघ्यसर्वाभिः कुशल्यस्तेऽप्युतोऽपुना ॥
कच्चिद् गवापजः सौम्य करोति पुरयोपिताम् ।
प्रीति तः स्निग्धसखीऽहहासोवारेक्षणाचितः ॥

(भा. १०।४७।३६, ४०)

उद्धवजी ! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि यहुवंशियोंको क्लेश पहुँचानेवाला पापी नराघम कंस अपने अनुचरोंके साथ मारा गया । इसे सुनकर हमें बड़े आनन्दका अनुभव हो रहा है । यह भी थोड़े आनन्दका विषय नहीं है कि श्रीकृष्णके बन्धु-बान्धवों के और गुरुजनोंके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये और

हमारे प्राण-प्रियतम श्यामसुन्दर उनके साथ सकुशल निवास कर रहे हैं ।

किन्तु हे उद्धवजी ! निष्कपट होकर आप हमें यह तो बतलावें कि जिस प्रकार हम अपनी प्रेम-भरी लजीली मुसकान और उन्मुक्त चितवनसे उनकी पूजा करती थीं और वे भी हमसे अत्यन्त प्यार करते थे, उसी प्रकार वे मथुराकी पुरनारियों से वंसा प्रेम करते हैं या नहीं ?

उस समय एक गोपी बोल उठी—अरी सखि ! हमारे प्यारे श्यामसुन्दर तो प्रेम-मोहिनी कलाके विशेषज्ञ हैं । जब नगरकी नारियाँ उनसे मीठी-मीठी बातें करेंगी, तो वे क्यों न मोहित होंगे ?

एक दूसरी गोपीने आगे बढ़कर उद्धवसे पूछा—हे उद्धवजी ! आप यह तो बतलाइए कि जब कभी नागरी नारियोंकी कोई बात चलती है और हमारे प्राणप्यारे स्वच्छन्द रूपसे बिना किसी संकोचके जब प्रेमकी बातें करने लगते हैं, तब क्या कभी प्रसङ्गवश वे हम जैसी गँवार ग्वालिनियोंकी भी याद करते हैं ?

ताः कि निशाः स्मरति यानु तदा प्रियामि-
वृन्दावने कुमुदकुन्वशशाङ्करभ्ये ।

रेमे भवणस्वरसानूपुररासगोष्वा-
मस्माभिरीडितमनोजकथः कवाचित् ॥

(भा. १०।४७।४३)

कुछ गोपियोंने कहा—उद्धवजी ! क्या कभी श्रीकृष्ण उन रात्रियोंका स्मरण करते हैं, जब कुमु-दिनी तथा कुन्दके पुष्प खिले हुए थे, चारों ओर

ज्योत्स्ना छिटक रही थी और वृन्दावन अत्यन्त रमणीय हो रहा था ? उन रात्रियोंमें ही उन्होंने रास-मण्डल बनाकर हम लोगोंके साथ नृत्य किया था । कितनी मनोरम थी, वह रासलीला ! उस समय हम लोगोंके चरणोंके नूपुर रुन-भुन रुन-भुन कर बज रहे थे । हम सब सखियाँ उन्हीं की सुन्दर लीलाओंका गान कर रहीं थीं और वे हमारे साथ नाना प्रकारके विहार कर रहे थे ।

कुछ दूसरी गोपियाँ बोल उठीं—उद्धवजी ! हम तो विरहकी अग्निसे जली जा रही हैं । देवराज इन्द्र जिस प्रकार जल बरसाकर वनको हरा-भरा कर देता है और पृथ्वीका ताप बुझा देता है, उसी प्रकार हमारे प्यारे श्रीकृष्ण भी हमें अपने कर-स्पर्शसे जीवन-दान देने क्या पधारेंगे ?

कुछ दूसरी गोपियाँ कहने लगीं—अब तक तो उन्होंने शत्रुओंको मारकर राज्य पा लिया है । उनके अनेकों सुहृद् बन गये हैं । अब वे बड़े-बड़े नरपतियोंकी कुमारियोंसे विवाह करेंगे, उनके साथ स्वतन्त्रतापूर्वक आनन्दका प्रचुर उपभोग करेंगे । अब वे हम गँवार, मूर्ख ग्वालिनियोंके पास क्यों आने लगे ?

और कुछ गोपियोंने कहा—नहीं सखियों, कृष्ण स्वयं लक्ष्मीपति हैं; वे सारी कामनाओंसे परिपूर्ण हैं । उन्हें हमारी जैसी वनवासिनी ग्वालिनियोंसे या राजकुमारियोंसे प्रयोजन ही क्या है ?

हे सखि ! वेश्या होने पर भी पिङ्गलाने ठीक ही कहा है कि संसारमें किसी भी प्रकारकी आशा

न रखना ही सबसे बड़ा सुख है । पर क्या करें, हम तो विवश हैं । श्रीकृष्णके लौटनेकी आशाको हम लोग छोड़नेमें सर्वथा असमर्थ हैं । उनके शुभागमनकी आशा ही तो हमारा जीवन-स्वरूप है ।

उद्धवजी ! यह वही नदी है, जिसमें वे विहार करते थे; यह वही पर्वत है, जिसके शिखर पर चढ़कर वे बाँसुरी बजाते थे; ये वे ही वन हैं, जिनमें वे रात्रिके समय रासलीला करते थे और ये वे ही गौएँ हैं, जिनको चरानेके लिए वे प्रातः सायं हम लोगोंको देखते हुए आते-जाते थे । आज भी वह बंशीकी तान हमारे कानोंमें गूँज रही है । जिसे वे अपने अधरोंके संयोगसे बजाते थे ।

यहाँका एक-एक प्रदेश, एक-एक धूलिकण, उनके परम सुन्दर चरणकमलोंसे चिह्नित हैं; इन्हें जब-जब हम देखती हैं, सुनती हैं, तब-तब हमारे प्राणप्यारे मनमोहन श्यामसुन्दरको सामने लाकर रखते हैं ।

हे उद्धव ! हम मरकर भी उन्हें नहीं भुला सकती हैं ।

गत्या ललितपोदारहासलीलावलोकनः ।

माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ॥

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथातिताशन् ।

मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनारणवात् ॥

(भा. १०।४७।५१,५२)

उनकी वह हंसकी सी सुन्दर चाल, उन्मुक्त हास्य, विलासपूर्ण चितवन और मधुमय वाणी !

ओह ! उन सबने हमारा चित्त चुरा लिया है । हमारा मन हमारे अधीन नहीं है । अब यदि हम भूलना भी चाहें, तो किस प्रकार भूल सकती हैं ?

हमारे प्राणप्रियतम श्रीकृष्ण ! तुम्हीं हमारे जीवनके स्वामी तथा जीवन-सर्वस्व हो । हे प्राणनाथ ! तुम लक्ष्मीनाथ हुए तो क्या हुआ ? हमारे लिए तो ब्रजनाथ ही हो । हम ब्रज गोपियोंके एकमात्र तुम्हीं सच्चे स्वामी हो । हे श्यामसुन्दर !

तुमने बारम्बार हमारी व्यथा मिटायी है । हमारे सङ्कटोंको तुमने दूर किया है । हे गोविन्द ! तुम गोओंसे अत्यधिक प्रेम करते हो । क्या हम गोएँ नहीं हैं ? तुम्हारा यह सारा गोकुल—जिसमें ग्वाल-बाल, पिता-माता, गोएँ और हम गोपियाँ सब कोई हैं—दुःखके अपार सागरमें डूब रहा है । तुम इसे बचाओ, आओ; हमारी रक्षा करो ।

(क्रमशः)

—बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ

श्रीचैतन्य महाप्रभु गाइये

जै जै श्री चैतन्य महाप्रभु गाइये ।
 सच्चिद आनन्द रूप सदा उर ध्याइये ॥
 प्रेमसिन्धु परिपूर्ण हिये उमगाइये ।
 गोरकिशोर सरूप कि बलि बलिजाइये ॥
 जाइये बलिरूपकी पुनि पेम अंग पुलकाइये ।
 शचीनन्दन नेह युत नित निरखि नैन सिराइये ॥
 अधम उद्धारन दयानिधि यही निश्चै लाइये ।
 सरस माधुरी शरण तिनका नित्य परिकर पाइये ॥

— चैतन्य पदावलीसे संगृहीत

श्रीमद्भागवतके टीकाकार

चित्सुखाचार्य (१)

परिचय

चित्सुखी टीकाके कर्ता चित्सुखाचार्य वेदान्त-शास्त्रके प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनका तत्त्व-प्रदीपिका नामक ग्रन्थ अद्यावधि इनके नामसे चित्सुखी शब्द द्वारा व्यवहृत होता है। यह ग्रन्थ विद्वानोंके अध्ययन, अध्यापनका प्रिय विषय एवं वेदान्त-शास्त्रका प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। चित्सुखाचार्यने भागवत पर टीका की थी। किन्तु वह अब उपलब्ध नहीं है। उसकी पंक्तियोंका यत्र-तत्र उल्लेख श्रीजीव-गोस्वामीने किया है (१) एवं टीकाकारोंने उनके स्वीकृत पाठकी चर्चा की है। इससे ज्ञात होता है कि इनकी टीका सम्पूर्ण भागवत पर अवश्य रही होगी।

चित्सुखाचार्यने विष्णुपुराणपर भी टीका की थी। इसकी पुष्टि श्री-श्रीधर स्वामीके वाक्यों द्वारा की जाती है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

श्रीमत् चित्सुख योगिमुख रचिते ।'

(विष्णु पु. टीका १।१ अंश, आत्मप्रकाश]

श्रीचित्सुख कर्ता उत्पन्न हुए—यह यद्यपि विश्वस्त रूपसे नहीं कहा जा सकता, तथापि विद्वानोंका मत है कि ये उत्तर भारतमें पर्याप्त रहे थे। (२)

सम्प्रदाय

इनके गुरुके बारेमें कोई संदेह नहीं। क्योंकि तत्त्व-दीपिकाके मंगलाचरणमें (३) इन्होंने 'ज्ञानोत्तम' नामक गुरुका उल्लेख किया है (४) 'चित्सुखी' ग्रन्थसे इन्हें केवलाद्वैत सम्प्रदायका माना जाना उपयुक्त है।

स्थिति-काल

चित्सुखाचार्यका समय संदिग्ध है; क्योंकि एस. एन. दासने इनका समय १२२० ई०, संवत् १२७७ विक्रम लिखा है (५)। बलदेव उपाध्यायका भी यही मत है (६)। किन्तु कतिपय विद्वानोंने इनका अभ्युदय काल नवम शताब्दीमें माना है (७)। परन्तु इतना निश्चित है कि श्रीधर-स्वामीने इनका उल्लेख विष्णु पुराणकी टीकामें

(१) क्रम-सन्दर्भ ४।१।३६ इति चित्सुखः।

(२) न्यायमतका खण्डन अधिकांश उत्तर भारतीय विद्वानोंने किया है।

(३) 'ज्ञानोत्तमार्थं तं वन्दे' (तत्त्व-प्रदीपिकाके मंगलाचरणमें)

(४) योगेन्द्रनाथ तीर्थके कथनानुसार चित्सुखाचार्य कामकोटि मठके अध्यक्ष थे एवं इनके गुरु 'ज्ञानोत्तम' गौड़ देशके थे। चित्सुखके सतीर्थका नाम विज्ञानात्म था।

(५) ए हिस्ट्री ओफ इण्डियन फिलॉसफी, पृ० १५७

(६) पुराण-विमर्श-पृ० ५७०, चौखंभा, वाराणसी

(७) संस्कृत साहित्यका इतिहास—बलदेव उपाध्याय, पृ० १७२

किया है (१)। अतः ये श्रीधर-स्वामीके पूर्व उत्पन्न हुए थे, यह निर्विवाद है। श्रीधर-स्वामीका समय १३५०-१४५० विक्रमके मध्यमें स्वीकृत किया जाना चाहिए। अतः इससे पूर्व इनका होना सिद्ध है।

चित्सुखाचार्यने न्यायलीलावती-ग्रन्थका खण्डन किया था। इस ग्रन्थके रचयिता 'वल्लभ' बारहवीं शताब्दीमें उत्पन्न हुए थे। साथ ही चित्सुखने हर्ष के मतोंका उल्लेख किया है। हर्ष बारहवीं शताब्दी में हुए थे। अतः हर्ष और वल्लभके पश्चात् एवं श्रीधर-स्वामीसे पूर्व चित्सुखका समय निर्विरोध स्वीकार किया जा सकता है।

श्रीजयतीर्थने अपनी वादावलिमें चित्सुखका उल्लेख किया है (२)।

कृतियाँ

“अच्युत” वाराणसीके अनुसार इनके दस ग्रन्थ थे (३)—

- १—भाव-प्रकाशिका।
- २—अभिप्राय-प्रकाशिका।
- ३—भगवतत्व प्रकाशिका।
- ४—अधिकरण-संगति।
- ५—अधिकरण मंजरी।
- ६—न्यायमकरन्द टीका।
- ७—प्रमाण रत्नमाला टीका।

८—विष्णुपुराण टीका।

९—भागवत टीका।

१०—खण्डन-खण्ड-खाद्य-व्याख्यान।

तत्त्व-प्रदीपिकाकी भूमिकामें भी कतिपय ग्रन्थों का उल्लेख है (४)—

१—शंकर दिग्विजय।

२—विवरण व्याख्या।

३—षट्-दर्शन-संग्रह।

४—ब्रह्म-स्तुति।

टीका-वैशिष्ट्य

नाम—टीकाकारोंने 'इति चित्सुख' शब्दका उल्लेख ही अधिक किया है। अतः इनकी टीकाका नाम अप्रसिद्ध हो गया है। 'चित्सुखी'-शब्द का प्रयोग ही इनकी टीकाके लिए प्रसिद्ध है।

परिमाण—यह टीका सम्पूर्ण भागवतपर रची गयी थी।

प्रकाशन—यह टीका अप्राप्य है। इसका प्रकाशन नहीं हुआ।

उद्देश्य—इस टीकाका उद्देश्य अद्वैत-सिद्धि रहा होगा। क्योंकि चित्सुखको केवलद्वैत सम्प्रदायका स्तंभ माना जाता है।

वैशिष्ट्य—इस टीकाका सर्वाधिक वैशिष्ट्य यह है कि भागवतके प्राचीन पाठका निर्धारण

(१) 'आत्म-प्रकाश टीका' विष्णु पुराण १।१।१ मंगलाचरण

(२) वादावलि-जयतीर्थ, पृ० १३६

(३) अच्युत-पृ० ११०

(४) तत्त्व-प्रदीपिका-भूमिका

चाहनेवाले विद्वानोंको संतुष्टि प्रदान करेगा। श्रीजीवगोस्वामीने कहीं-कहीं केवल चित्सुखके पाठका ही समादर किया है, भले ही वह श्रीधर-स्वामीके पाठसे असम्बद्ध हो। जैसे—‘तप्यमानं त्रिभुवनम् प्राणायामंधसाग्निना’ (१) यहाँ श्रीधरके इस पाठका चित्सुखसे वैमत्य है। चित्सुखने ‘प्राणायामेन’-पाठ माना है।

जहाँ श्रीधर स्वामीने ‘सप्तर्षयः’ पाठ माना है, वहाँ चित्सुखने ‘सप्त ब्रह्मर्षयः’ माना है। श्रीजीव गोस्वामीने दोनों पाठोंको ही शुद्ध माना है—सप्त ब्रह्मर्षयः इति पाठश्चित्सुख सम्मतः। सप्तर्षयः इति क्वचित्। टीका तूभयथा लगति (२)।

इसी प्रकार—

“सुहृद्दृक्षुः परिशङ्किताभवान्” में ‘परिशङ्किता’ पाठ श्रीधरने एवं ‘परिशङ्किनी’ पाठ चित्सुखने माना है। श्रीजीव गोस्वामीने लिखा है—‘परिशङ्किनोति चित्सुखः’ (३)।

चित्सुखका वैशिष्ट्य उनके पाठके कारण भी महत्वपूर्ण है। इसकी पुष्टिका एक यह भी प्रमाण है कि श्रीजीव गोस्वामीने कहीं-कहीं केवल उनके पाठका उल्लेख ही किया है। अपनी ओरसे एक वर्य भी नहीं लिखा है, यथा—‘न यस्य लोके’-

भागवत ४।४।११ की टीकामें ‘प्रतीपयेत्’ के स्थान में ‘प्रतीयत’ पाठ चित्सुखका लिखा है (४)।

चित्सुखकी भाषा अत्यन्त परिमार्जित, प्रौढ़ तथा गंभीरता लिए थी—

नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्दिनिन्दा कुरुपात्मवादिषु”
(भा० ४।४।१३)

“सोपहासमाह। तेजोऽन्तर रहितेषु मृतकेषु भीषणत्वमिव तदेव तेजस्त्वख्यापनात् शोभनं गौरवापादकं नान्यत् किमप्यस्तीति तैः किमन्यत् कर्त्तव्यमिति भावः पादपांशु शब्देनात्र प्रभावलेशो लक्ष्यते लक्षणाचेयं—तेषामतितुच्छत्व व्यञ्जनार्थां सेष्या इति चित्सुखः।”
(क्रम-सन्दर्भ)

यहाँ प्रायः टीकाकार ‘सेष्यं’ पाठ मानते हैं, जब कि चित्सुखने ‘सेष्या’ पाठ माना है। यह निश्चय है कि यदि चित्सुखकी भागवत-टीका कहीं उपलब्ध हुई, तो अवश्य एक नवीन तथ्य आगे आवेगा। अद्वैतका अत्यधिक प्रतिपादन होनेके कारण वैष्णवोंने उसकी उपेक्षा की होगी। अतः वह अधिक प्रचलित न हो सकी। अन्यथा श्रीधरकी टीकाकी भाँति वह भी गौरवान्वित होती।

—विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी,
साहित्यरत्न, एम. ए. पी. एच. डी.

(१) क्रम सन्दर्भ ४।१।२१

(२) क्रम-सन्दर्भ ४।१।४०

(३) क्रम-सन्दर्भ ४।४।१

(४) ‘प्रतीयत इति चित्सुखः’ क्रम-सन्दर्भ ४।४।१३

गोपियोंका कृष्ण-तादात्म्य

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गी जयतः

तारागढ़ (पंजाब)

२६-४-६८

श्रीचरणकमलोंमें दण्डवत्-प्रणाम,

पूज्य महाराजजी ! श्रीचरणोंमें कुछ प्रश्न लिख रहा हूँ । इन प्रश्नोंके उत्तर लिखकर मनका सन्देह दूर करनेकी कृपा करेंगे । आप कृपालु सज्जनोंके अतिरिक्त मैं और किसीको अपना बन्धु नहीं जानता । प्रश्न ये हैं—

(१) श्रीमद्भागवतके रास-प्रसंगमें श्रीकृष्णके सहसा अन्तर्धान हो जाने पर गोपियाँ श्रीकृष्णका चिन्तन करती हुई एक ऐसे भावको प्राप्त हो गयीं कि उनको सारा जगत कृष्णमय देखने लगा और यहाँ तक कि वे स्वयं भी तादात्म्य भावको प्राप्त होकर अपनेको भी कृष्णरूप ही अनुभव करने लगीं । यहाँ सारे जगतको कृष्णमय देखने तथा अपनेको भी श्रीकृष्णरूप जाननेका तात्पर्य क्या है ?

(२) वैदिक ज्ञान-योग और आधुनिक माया-वाद (शांकर-केवलाद्वैतवाद या निर्विशेष ब्रह्मवाद) में क्या अन्तर है ?

(३) श्रीमद्भागवतके मतानुसार पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा-इनमेंसे कौन-कौनसे गतिशील हैं ? और कौन-कौन स्थिर हैं ? श्रीभागवत पत्रिकाके प्रथम वर्षकी संख्या ६ में श्रील प्रभुपाद द्वारा

लिखित वैष्णव-दर्शन नामक लेखमें पृथ्वीका घूमना दिखलाया गया है । शुद्ध विचार क्या है ?

उत्तर

(१) श्रीकृष्णप्रेमके सर्वोच्च शिखर पर विराजमाना, स्वरूपशक्तिकी सम्बन्ध और ह्लादिनीके सारातिसार महाभावस्वरूपिणी, नित्य कृष्ण-प्रिया श्रीमती वृषभानुनन्दिनी एवं उनकी कायव्यूहस्वरूपा ब्रज-गोपियोंके दिव्यातिदिव्य महानिगूढ प्रेम-तत्त्वको जब जगद्गुरु ब्रह्माजी ही समझनेमें असमर्थ होकर—गोपियोंकी साक्षात् कृपाको प्राप्त करनेमें अपनेको सवथा अयोग्य जानकर केवलमात्र उनकी पवित्र चरण-रजको प्राप्त करनेके लिये ब्रजमें कहीं भी गुल्म, लता या तृणका जन्म प्राप्त करनेमें भी अपना परम सौभाग्य मानते हैं—

‘तद्भुरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां

यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रि रजोभिवेकम् ।’

(श्रीमद्. १०।१४।२४)

औरोंकी तो बात ही क्या, जो उद्धव श्रीकृष्णको ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मीजी, बलरामजी तथा अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारे हैं, वे कृष्ण-तत्त्वके सर्वश्रेष्ठ आचार्य श्रीउद्धवजी भी कृष्णके आदेशसे ब्रजमें उपस्थित होकर कृष्ण-प्रेमकी मूर्तियाँ-गोपियों

के अगाध और अनन्त प्रेम-महासमुद्रके किनारे खड़े होकर गोपी-चरणरजको प्राप्त करनेके लिए ब्रजमें तृण, गुल्म आदि जन्मकी प्रार्थना करने लगते हैं—

‘आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्वां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।’

तब साधारण लोगोंको गोपी-भाव हृदयङ्गन करना कितना कठिन है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। केवलमात्र उन्हीं गोपियोंकी कृपासे अथवा गोपियोंके कृपापात्र श्रीरूप-सनातन-जीव-रघुनाथ आदि गोस्वामियोंकी कृपासे ही कुछ अवगत हुआ जा सकता है।

श्रीमद्भागवतके श्रीरासपंचाध्यायीमें श्रीकृष्णके सहसा अन्तर्धान होनेपर श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और उनकी लीलाओंका चिन्तन करती हुई हुई सम्पूर्ण रूपसे तादात्म्य—तन्मय हुई गोपियोंका मार्मिक वर्णन उपलब्ध होता है—

गत्यानुराग - स्मित - विभ्रमेक्षितै-
मनोरमालाप-विहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापते-
स्तास्ता विवेष्टा जगृहस्तदात्मिकाः॥
गति-स्मित-प्रेक्षण - भाषणादिषु
प्रियाः प्रियस्य प्रतिरुद्धमूर्त्तयः ।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका
न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥

(भा. १०।३०।२-३)

इन श्लोकोंका साधारण अर्थ इस प्रकार है—
श्रीकृष्णकी ललित गति, प्रेमभरी सुमधुर मुसकान,

अत्यन्त मधुर तिरछी भृकुटी, प्रीतिभरी चितवन, मनोरम प्रेमालाप, अन्यान्य विविध लीलाविलास और शृङ्गारमयी भाव-भंगियोंके स्मरणसे कृष्ण-प्रेयसी गोपरमणियोंका चित्त खिचकर श्रीकृष्णमें प्रगाढ़ रूपसे आसक्त हो गया। वे श्रीकृष्ण-भावना में तन्मय होकर श्रीकृष्णद्वारा की गयी लीलाओंका अनुकरण करने लगीं।

इससे प्रियतम श्रीकृष्णकी ललित गति, मधुर हास, मनोरम चितवन, अमृतमय वचन आदिमें वे श्रीकृष्णकी प्यासी ब्रजसुन्दरियाँ उनके ही समान बन गयीं। उनके शरीरसे भी कृष्ण जैसी चेष्टाएँ प्रकट होने लगीं और वे श्रीकृष्णके विहार विलास के स्मरणजनित भावसे उन्मादिनी होकर श्री-कृष्णात्मिका (कृष्ण भाववाली) बन गयीं तथा ‘मैं ही कृष्ण हूँ’ इस प्रकार परस्पर परिचय देने लगीं।

श्रीमद्भागवतके चोटीके टीकाकारोंने जो इसके गूढ़ तात्पर्य प्रकट किये हैं, उसका भावार्थ यह है कि—ब्रजगोपियाँ श्रीकृष्णकी नित्य प्रेयसियाँ हैं। वे कोई साधारण स्त्रियाँ नहीं हैं। वे साधक अथवा साधनसिद्ध या नित्यसिद्ध जीवकोटिके अन्तर्गत भी नहीं हैं। बल्कि उनमेंसे श्रीमती राधिकाजी तो स्वयंरूप भगवान् श्रीकृष्णकी निखिल शक्तियोंकी मूल अंशिनी स्वयं स्वरूपशक्ति हैं तथा अन्य ब्रज-रमणियाँ श्रीमती राधिकाकी कायव्यूहस्वरूपा हैं। ये कृष्णकी नित्य प्रिया हैं और नित्यकाल ही रहेंगीं। श्रीकृष्णके साथ ही इनका भी आविर्भाव और तिरोभाव होता है।

मूल श्लोकमें 'रमापतेः' और 'प्रमदा' शब्दपर ध्यान देना उचित है। टीकाकारोंने 'रमापतेः' का इस प्रकार अर्थ किया है—

'रमापतेः'—रमायाः सर्वरूप-गुण-माधुर्यैश्वर्य-सम्पदधिष्ठातृशक्तेः। पत्युरध्यक्षस्य इति—सर्वाति-शायिता सूचिता; यद्वा रमा श्रीराधा इति पूर्ववत्, इति वक्ष्यमाणतत्साहित्यं सूचितम्। (श्रीजीव गोस्वामी) 'रमायाः'—सम्पूर्णं रूप-गुण-माधुर्य-ऐश्वर्य-सम्पदकी अधिष्ठात्री शक्तिके पति अर्थात् अध्यक्षकी—अथवा रमा=श्रीराधा (पूर्वकी भाँति विविध शास्त्रोंद्वारा प्रतिपादित)। इसलिये रमा-पति=श्रीराधा और उनके पति श्रीकृष्ण। इसके द्वारा श्रीराधाके सहित कृष्णका बोध होता है। आगे ऐसा कहा गया है।

श्रीसनातन गोस्वामी भी कहते हैं—

'रमा श्रीराधेति पूर्ववत् इति वक्ष्यमाणत-त्साहित्यं सूचितं।'

विशुद्धिरस दीपिकाकार भी कहते हैं—

'रमा श्रीराधा × × × × तस्याः पतेः धवप्रियः पतिर्भर्तृति कोशात् राधावल्लभस्येत्यर्थः।'

रमा=सर्वलक्ष्मीमयी श्रीराधा, उनके पति अर्थात् भर्ता (कोषके अनुसार) अतएव रमापतेःसे श्रीराधावल्लभका तात्पर्य है। ब्रह्मसंहितामें भी व्रजरमणियोंको स्वरूपशक्ति और स्वरूप शक्तिका कायव्यूह कहा गया है—

आनन्दचिन्मयरस प्रतिभावितामि-
स्तामियं एव निजरूपतयाकलाभिः।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो

गोविन्दभाविपुरयं तमहं भजामि॥

(ब्रह्मसंहिता ३७ श्लोक)

—जो अखिलात्मभूत गोविन्द अपने नित्यधाम श्रीगोलोकमें अपने ही समान आनन्द-चिन्मय-रस द्वारा विभावित चिद्रूपों और चौसठ कलाओंसे युक्त ह्लादिनीशक्तिरूपा श्रीमती राधिका एवं उनकी कायव्यूहस्वरूप सखीवर्गके साथ नित्य विलास करते हैं, उन आदि पुरुष गोविन्दका में भजन करता है।

'प्रमदा':—सम्पूर्णरूपसे कृष्ण-प्रेमरूपी मदसे मतवाली या उन्मत्ता अर्थात् महाप्रेमवती गोपियाँ। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर सारार्थदर्शिनी टीकामें लिखते हैं—

'प्रमदा—प्रकर्षेण माद्यन्तीति ताः।'

श्रीजीव गोस्वामी भी कहते हैं—

'प्रमदाः—प्रकृष्टमदयुक्ताः'

ऐसी महाप्रेमवती नित्य-कृष्णप्रेयसियाँ अपने प्रियतमके सहसा अन्तर्धान होनेपर विरहकी उत्कट उन्मादके कारण पागलिनी हो उठीं। वे प्रियतमकी ललित गति, प्रेमभरी सुमधुर - मुसकान, तिरछी चितवन, मनोरम प्रेमालाप तथा अन्यान्य विविध लीलाविलास और शृङ्गारमय भाव - भंगियोंका स्मरण करतीं २ अपने-अपने शरीरकी सुध-बुध भूल गयीं। विभ्रमैः—विरहावस्थामें चित्तवृत्ति—विवेक आदिके खो जानेपर जो विशेषरूपसे भ्रम हो जाता है—जो न करनेवाली बातें हैं, वे भी होने लगती हैं तब उसे 'विभ्रम' कहते हैं—'चित्तवृत्त्यानवस्थानं शृङ्गाराद्विभ्रमो मतः।'

ऐसी प्रेमोन्मत्ता गोपियाँ कृष्णका उपर्युक्त प्रकारसे चिन्तन करते-करते कृष्णमयी हो गयीं। 'तदात्मिका'—तन्मयी (कृष्णमयी) हो गयीं अर्थात् उनकी सर्वत्र ही कृष्ण-स्फूर्ति होने लगी। यहाँ कृष्णमयी होने तथा कृष्ण-स्फूर्तिका तात्पर्य यह है कि गोपियाँ कृष्णके चिन्तनमें इतनी आविष्ट हो गयीं कि उनकी जहाँ भी दृष्टि जाती थी, सर्वत्र ही उनको कृष्ण-भावकी उद्दीपना होती थी। यमुनाको देख कर उन्हें अपने साथ यमुना में कृष्णकी क्रीड़ाका स्मरण उठता था; यमुना-पुलिनमें कृष्णके पदचिह्नोंको देख कर उनमें कृष्णकी स्मृति जग उठती थी; उपवनों, कुँजों, लता-गृहों, कदम्ब आदि वृक्षोंको देखकर उन्हें कृष्णकी विविध मनोहारी क्रीड़ाओंका स्मरण आते ही उनका विरह-उन्माद चरमावस्थाको प्राप्त हो उठता था। अहो! ब्रजके कण-कणमें कृष्णकी स्मृति प्रोतः प्रोत है। कोई भी ऐसा वृक्ष नहीं, जहाँ कृष्णने ललित त्रिभंगी भंगिमा से खड़े होकर मुरलीकी ध्वनि नहीं की हो; कोई ऐसा कुण्ड नहीं, जहाँ कृष्णने उनके साथ स्नान न किया हो; कोई ऐसी लता नहीं, जिसके पुष्पों और मंजरियोंको कृष्णने धारण न किया हो; अतः इनको देखते ही उनकी कृष्ण-स्मृति तीव्र-से-तीव्रतर हो जाती। इतना ही नहीं वे आकाशके चाँदमें कृष्णका लालित्य देखतीं, फूलोंमें कृष्णकी हँसी देखतीं और कोयलकी मधुर काकलीमें कृष्णकी ही मधुर वाणीको सुनतीं। कहाँ तक कहा जाय, ब्रजकी प्रत्येक वस्तु उन्हें कृष्णकी स्मृतिसे विभोर कर देती। इस प्रकार कृष्ण-भावना करती हुई वे इतनी तन्मय हो गयीं कि उन्हें भीतर-बाहर सर्वत्र

ही कृष्णकी स्फूर्ति होने लगी। वे संसारकी तो बात ही क्या, अपने शरीर की भी सुध-बुध भूलकर कृष्णात्मिका बन गयीं। अन्यत्र भी गोपियोंकी तादात्म्यताका इसी प्रकार वर्णन किया गया है—

सरिच्छंलवनोद्देशान् मधुसूदनपदभूषितान् ।

आक्रीडानीक्ष्यमाणानां मनो याति तदात्म्यताम् ॥

(श्रीमद्भक्त १०।४६।२२)

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरजी कहते हैं कि १०।३०।२ श्लोकके 'तदात्मिका' और 'प्रतिरुद्धमूर्त्यः'—इन दोनों पदोंका तात्पर्य यह है कि कृष्णके मधुर मुख, मधुर हँसी और प्रेमभरी तिरछी चितवन आदिका चिन्तन करती हुई गोपियाँ इस प्रकार प्रगाढ़ रूपसे आविष्ट हो गयीं कि उनकी सारी इन्द्रियाँ, मन और वाणी—सब कुछ कृष्णमूर्ति जैसा ही हो गया अर्थात् वे उन्मत्त भावके कारण अन्दर-बाहर सर्वथा ही श्रीकृष्ण भावसे विभावित होकर अपनेको श्रीकृष्णसे अभिन्न समझने लगीं। वे उस समय 'मैं ब्रजनारी हूँ'—ऐसा भूलकर 'मैं कृष्ण ही हूँ' अथवा 'वे कृष्ण ही मैं हूँ' इस भावमें सर्वथा विभावित होकर परस्पर वार्त्तालाप करने लगीं।

वास्तवमें कृष्णके विहार-विलासका स्मरण करके ही वे इस प्रकार उन्माद दशाको प्राप्त कर रसास्वादनकी प्रीतिमय अवस्था—तादात्म्य भाव को प्राप्त हुईं। इनकी यह तन्मयता अर्द्धत-भावना (अर्द्धप्रहोपासना) के आवेश के कारण नहीं थी, इसी अभिप्रायसे ही यहाँ 'प्रियाः-प्रियस्व' शब्दोंका उल्लेख है। इसका गूढ़ आशय यह है कि कृष्ण में स्वाभाविक प्रेमवती होनेसे ही ब्रजरमणियाँ कृष्ण-

प्रिया हैं तथा वे कृष्णको जिस प्रकार प्रियतम मानती हैं, कृष्ण भी उनको उसी प्रकार प्रियतमा जानकर उनके प्रति प्रेम-व्यवहार करते हैं—ऐसा प्रिय-प्रेम व्यवहार गोपियोंके स्मृति पटल पर सदैव उदित होकर वैसे तन्मयताके रूपमें पर्यवसित हो रहा है।

‘ततश्चोन्मादादेकीभावे सति असी कृष्ण एवाहं किम्वा अहमेव कृष्ण इत्यादिसावधारणां भावनां विहाय असावहं कृष्णोऽहमिति रसास्वादप्रौढिमयी-मवस्थां प्राप्य तदात्मिकाः प्राप्त कृष्णतादात्म्याः न तु अहंग्रहोपासनावशादेवेति ज्ञेयम् ।

(श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीकृत सारार्थदर्शिनी १०।३०।३)

इसी प्रकार श्रीजीव गोस्वामी भी उक्त श्लोक-की वैष्णवतोपिणी टीकामें ‘तदात्मिका’ का अर्थ तन्मयी बतलाते हुए श्रीकृष्णके नाम-रूप-गुण-लीलाश्रोंका स्वाभाविक रूपसे प्रगाढ़ चिन्तनको ही वैसे तन्मयताका कारण बतलाया है तथा उसमें अद्वैत-भावना या अहंग्रहोपासनाके गंधका भी अभाव बतलाया है—

‘तदात्मिकास्तन्मयः’ पुनः तन्मयत्वञ्च प्रेम-लीलाभर स्वाभावेनैव, न तु अहंग्रहोपासनावेशेनेत्या-वेशेनेत्याशयेनाह—प्रियाः-प्रियस्येति ।’

ब्रज-रमणियाँ कृष्णप्रेमकी प्रगाढ़ताके कारण ही श्रीकृष्ण-लीलाश्रोंका अनुकरण करने लगती हैं। उज्ज्वलनीलमणिमें ऐसे लीलानुकरणको ‘लीला’ नामक अनुभाव कहा गया है तथा उसका लक्षण इस प्रकार निर्दिष्ट किया गया है—

‘प्रदानुकरणं लीला रम्यबंध-क्रियाविनिः’

अर्थात् प्रेमकी प्रगाढ़ावस्थामें तन्मयताके कारण प्रियके रमणीय वेश और क्रियाश्रोंके अनुकरणको ‘लीला’ नामक अनुभाव कहते हैं। उदाहरण स्वरूप गीतगोविन्दका यह पद लिया जा सकता है—

‘सुहृद्वलोकितमण्डनलीला,
मधुरिपुरहमिति भावनशोला ।’

कोई सखी श्रीकृष्णके निकट विरहव्याकुला श्रीमती राधिकाकी अवस्थाका वर्णन कर रही है कि—हे कृष्ण ! श्रीमतीजीकी अवस्था बड़ी शोचनीय है। वे किसी प्रकार तुम्हारे आवेशके कारण ही जी रही हैं। वे तुम्हारे जैसे मोरमुकुट, और गुंजामाला आदि वेशभूषा धारण करके बार-बार उसे देख कर भावावेशमें ‘मैं ही कृष्ण हूँ’ ऐसा मानती हैं।

कृष्ण-प्रेयसियोंकी इस प्रकारके कृष्णावेशमें अद्वैत भाव या अहंग्रहोपासनाका लेशमात्र भी गंध या कारण न रहनेका अकाट्य प्रमाण यह है कि उन कृष्ण-प्रेयसियोंने किसी भी अवस्थामें अपने निजस्व या स्व-स्वरूपगत भावोंका कदापि परित्याग नहीं किया। श्रीजीवगोस्वामी १०।३०।१४ श्लोक की टीकामें इस विषयको स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

‘तत्र हेतुः—तदात्मिकाः तस्मिन् श्रीकृष्णे प्रात्मा चित्तं यासां ताः गाढं तदासक्ता इत्यर्थः । अत्रं कृष्णानुकरणं स्फुटमेव तदात्मकतया । तत्र य स्वभावापरित्यागेन नाभितदभेदस्फूर्तिः । यतन्त्युच्चि-दधेऽम्बरम्’ । (श्रीमद्भा० १०।३०।२०) इत्यत्र यत्नं कथनात् ‘कृष्णोऽहं पश्यत गतिम्’ (भा० १०।३०।१६)

इति स्वस्मिन् कृष्णत्व-साधनार्थं तच्छब्दप्रयोगाच्च
इत्यादि ।

तात्पर्य यह कि—इस प्रकार गोपियाँ कृष्णकी विविध लीलाओंका अनुकरण करने लगीं । इसका हेतु उनका तदात्मिका होना ही है अर्थात् उनका चित्त प्रगाढ़ रूपसे कृष्णमें आसक्त होनेके कारण ही वे लीलानुकरण करने लगीं । इसके द्वारा यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कृष्ण-लीलाओंके अनुकरण-के समय भी गोपियोंका श्रीकृष्णके साथ अत्यन्त अभेदकी स्फूर्ति नहीं हुई थी; क्योंकि गोपियोंने उस समय भी अपने स्व-स्व भावोंका परित्याग नहीं किया था । अगले श्लोकमें कोई गोपी दूसरी गोपियोंसे कहती हैं कि तुम लोग आँधी और वर्षा से भय न करो, मैं उससे तुम्हारी रक्षाकी व्यवस्था कर रही हूँ ।' कोई गोपी दूसरी गोपीके कन्धोंपर हाथ रखकर कहती है—'गोपियों ! मैं कृष्ण हूँ, मेरी सुललित गतिको देखो ।' यहाँ पर वक्ता गोपी दूसरी गोपियोंको गोपी रूपमें ही देखती हैं तथा उनको अपनेसे भिन्न रूपमें देखती हैं । यदि उनमें अत्यन्त अभेदकी स्फूर्ति होती तो वे लीलानुकरण नहीं कर सकतीं अथवा अन्य गोपियोंसे वार्त्तालाप आदि भी नहीं कर सकती थीं । न वे पृथक् रूपमें यशोदाकी सत्ता अनुभव करतीं, न पूतनाकी भी भावना करतीं ।

कुछ लोग इन श्लोकोंका कदर्थ कर यह सिद्ध करनेका असफल प्रयास करते हैं कि श्रीमद्भागवत का भी चरम प्रतिपाद्य तत्त्व अद्वैत-सिद्धि या निर्विशेष ब्रह्मभावकी प्राप्ति ही है । उनके अनुसार

गोपियोंकी भाँति जीव भी ब्रह्म - चिन्तन करते-करते ब्रह्म ही हो जाता है । जैसे तैलपायी कीड़ा भ्रमर कीट द्वारा पकड़े जाने पर उसीकी चिन्ता करते-करते वह भी भ्रमर कीट हो जाता है ।

परन्तु यहाँ सोचनेकी बात है कि तैलपायी कीट भावना द्वारा भ्रमर-कीटमें मिलकर एक नहीं हो जाता, वह दूसरा कीट बनकर अलग ही रहता है । यहाँ सारूप्य मुक्तिका आंशिक उदाहरण माना जा सकता है, अभेद या निर्विशेष मुक्तिका नहीं । दूसरी बात गोपियाँ तो गोपियाँ ही रहीं; कुछ क्षणके लिए प्रेमकी प्रगाढ़ता हेतु उनमें कृष्णावेश ही था । वे रूप आदिमें कृष्ण ही नहीं बन गयी थीं । माया-वादियोंका उपर्युक्त सिद्धान्त उनका दुराग्रहमात्र है । कोई भी जीव ब्रह्ममें अपनी सत्ता विलीन कर अद्वैतवादियोंका काल्पनिक अद्वैत-ब्रह्म मात्र तक कभी भी नहीं पाया है । इसका कहीं भी कोई उदाहरण ही नहीं है ।

अब नीचे उक्त तात्पर्यके सार स्वरूप कुछ कारण दिये जा रहे हैं जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन श्लोकोंका तात्पर्य अद्वैत-भावना नहीं है—

(१) ब्रह्मसंहिता, गोपालतापिनी, पद्मपुराण, विष्णुपुराण आदि श्रुतियों-स्मृतियों एवं पुराणोंके अनुसार गोपियाँ कृष्णकी परिकरस्वरूपा नित्य प्रेयसियाँ हैं । अतः इनमें अद्वैत-भावना कदापि संभव नहीं है ।

(२) निर्विशेष अद्वैत - भावनामें द्वैत-भावना कदापि नहीं होती । किन्तु गोपियोंकी 'मैंही कृष्ण हूँ' इस कृष्णावेश अर्थात् कृष्ण-तादात्म्यमें द्वैत-भावना

विद्यमान थी। जिस समय वे अपनेको कृष्ण मान रही थीं, उसी समय वे दूसरी गोपियोंको गोपियाँ कह कर ही सम्बोधित कर रही थीं। पुनः कोई गोपी अपनेको कृष्ण और दूसरीको पूतना, कोई गोपी अपनेको कृष्ण और दूसरीको कालीय नाग; किसीको अघासुर, किसीको अन्य कुछ मानकर बहुविध कृष्ण-चरित्रोंका अनुकरण कर रही थीं।

(३) अद्वैत-सिद्धि होने पर एक अखण्ड अद्वैत ब्रह्म ही भासता है। उसमें कहीं भी तनिक भी द्वैत भाव नहीं रह जाता। परन्तु गोपियोंमें ऐसा नहीं दीख पड़ता। वे कृष्णावेशकी दशामें ही वृन्दावनकी लताओं, वृक्षों, पर्वतों, नदियों तथा विभिन्न प्राणियोंको देखती हैं। उनको केवल कृष्ण-प्रेमकी प्रगाढ़तासे ही भ्रम हो पड़ता है, जिसे रसशास्त्रमें 'लीला' नामक अनुभाव कहते हैं। पुनः प्रेमका आवेश कुछ शिथिल हो पड़ने पर वे जैसोकी तैसी होकर कृष्णके लिए विलाप करने लगती हैं। यहाँ अखण्ड अद्वैत-भावका अभाव परिलक्षित होता है।

(४) अद्वैत-भावमें ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञानकी अथवा उपासक, उपास्य और उपासनाकी त्रिपुटीका विनाश होना अनिवार्य है। परन्तु गोपियोंके तादात्म्य-भावमें भी ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञानकी—उपासक, उपास्य और उपासनाकी त्रिपुटी विद्यमान थी।

(५) निर्विशेष अद्वैत-ब्रह्म अकाम, निर्विकार, शान्त आदि होता है। परन्तु तादात्म्य अवस्थामें भी गोपियोंमें पूतना, अघासुर, कालीय नागके प्रति क्रोधकी भावना, गोपियों और म्बालबालोंकी दावाग्नि तथा इन्द्रकुत वज्रपात और वर्षा-आघीसे रक्षाकी भावना स्पष्टरूपमें परिलक्षित होती है। साथ ही कोई गोपी यशोदा द्वारा अपनेको कृष्ण-भावसे बँधी हुई जानकर रोने या भयभीत होनेका भाव भी दिखलाती है। अतः गोपियोंके कृष्णावेशमें अद्वैत-भावके गंधकी कल्पना तक भी संभव नहीं है।

अतएव गोपियोंकी सर्वत्र कृष्ण-स्फूर्ति या तादात्म्य अवस्थामें उनका कृष्णमयी होना—प्रेमकी प्रगाढ़ अवस्थाका एक भाव-विशेष है, जिसे लीला नामक अनुभाव कहते हैं।



परमाराध्य महामहीम परिव्राजकाचार्यवर्य ॐ विष्णुपाद परमहंस
श्रीधील भक्ति-प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव-
तिथिके परम पवित्र पर्व पर श्रीचरणोंमें

कविता पुष्पाञ्जलि

श्रीकेशव प्रभु इतनी कीजे ।

सीतल सुभग अमल सुखदायक चरण निवास कृपा करि दीजे ।
निरखत रहों विमल सुन्दर मुख रसना रहो नाम गुण भीजे ॥
पाप-तापहर वचन माधुरी श्रवण सुनी निसिवासर रीके ।
कृष्णचन्द्रकी आश पूर्ण करि प्रतिशय निकट आपने लीजे ॥

+ + + +

चलु जन श्रीकेशव प्रभु चरण शरण ।

मधुर रसमण्डनं कलि दुःखखण्डनं जगत परिवृद्ध त्रयतापहरणम् ।
आधि व्याधिशरणं भवसिन्धुतारणं, मनुज उद्धार हेतु नरवपुधरणम् ।
कृष्णचन्द्र सुखसागरं विमलगुणआगरं भजले श्रीकृष्णभक्ति प्रकटकरणम् ॥

+ + + +

देश विदेश विरोध बढो अति स्वारथको मघवा जग छायो ।
भूठ प्रपंच असत्य प्रभाषण मानवके मनमें अति भायो ॥
सत्य गयो परमार्थ गयो निज, संस्कृतिको सब मान नसायो ।
वेगु सुधार अहो करुणाकर हे प्रभु केशव नाम धरायो ॥

+ + + +

अतुलित महाप्रकाश बढी अविद्या नाश करि ।
जगकर करहु विकाश सद विद्या गुण राशि ले ॥

—पं वागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ



क्यों वेदोंमें गोमांस भक्षणका विधान है ?

वेदोंमें गोमांसके विधानका प्रश्न आजके युगका एक ज्वलन्त प्रश्न बना हुआ है। पिछले दिनों भारत सरकारके खाद्य मन्त्री और कृषि मन्त्रीने जो वक्तव्य दिया है, उससे धुब्ध होकर अनेक व्यक्तियोंने मेरे पास पत्र भेजकर मुझसे इस विषय पर विचार प्रकट करने का आग्रह किया।

इस विषयमें अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं। जिनमें पाश्चात्य विचारधाराका अनुकरण करनेवाले लेखकोंने लोगोंको भ्रांतिमें डाल दिया है। पर वास्तविकता यह है कि वेदोंमें ऐसा विधान कहीं नहीं है और न यज्ञोंमें गोमांसकी आहुति डालनेका विधान है। जो विद्वान् वेदोंमें गोवधकी बातका प्रतिपादन करनेका प्रयास करते हैं, मैं स्पष्ट कहूंगा कि वे संस्कृतसे अनभिज्ञ हैं और वेदोंसे तो सर्वथा हो अनभिज्ञ। संस्कृतमें यज्ञके लिये प्रयुक्त हुए अनेक शब्दोंमें एक शब्द 'अध्वर' भी है। वेदोंमें यह शब्द यज्ञके पर्याय एवं विशेषणके रूपमें अनेक स्थलों पर आया है। इस शब्दका निर्वचन करते हुए निरुक्तकार यास्क (निरु० २।७) लिखते हैं—

अध्वर इति यज्ञनाम-ध्वरतिहिंसाकर्म तत्प्रतिषेधो अध्वरः ।

ध्वरका अर्थ है हिंसा। जिस कर्ममें हिंसा नहीं होती, वह कर्म अध्वर कहलाता है। यह शब्द चारों में आया है। (देखो ऋ० वे० १।१।८, १।१।२१, १।१२।४ यजुर्वेद १५, ३८, २।४ सामवेद २१, १६,

३२ अथर्ववेद ४।२।४।३, १८।२।३२, १।४।२, १६।४।२) इसलिये यह अध्वर शब्द हिंसाका वाचक तो हो नहीं सकता। अतः यह कहना कि ऋषि अध्वरमें पशुओंकी हिंसा करते थे, 'वदतोव्याघात' दोष ही है। इससे ज्यादा उपहासास्पद बात तो यह है कि जो मन्त्र बोलकर पशुका वध किया जाता है उसी मन्त्रसे पशुकी रक्षाकी प्रार्थना की गई है। वह मन्त्र इस प्रकार है—

ओषधे त्रायस्व, स्वधिते मंनं हिंसीः ।

'हे ओषधे, इस पशुकी रक्षा कर, हे फरसे, तू इसे मत मार।' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए पाजक पशुको मारे, कितनी उपहासास्पद बात है !

अजमेध और अश्वमेध

प्राचीन समयमें ऋषियों द्वारा अजमेध, अश्वमेध, नरमेध आदि अनेक तरहके मेध किये जाते थे। इन सभी मेधोंमें अज, अश्व आदि शब्द पारिभाषिक हैं, इनका अर्थ इस सन्दर्भमें बकरा, घोड़ा आदि करना असंगत होगा। अजका अर्थ है सात वर्ष पुराने चावल या एक प्रकारके बीज। इन बीजोंकी यज्ञमें आहुति दी जाती थी। महाभारतमें कहा है—

अजः यज्ञेषु यष्टव्यं इति च वैदिकी श्रुतिः ।

अज संज्ञानि बीजानि द्यागात्रो हन्तुमर्हथ ।

नैष धर्मः सतां देवः यत्र वध्येत धे पशुः ॥

(शा. पा. अध्याय ३३७)

‘यह वैदिक विधान है कि अजोंके द्वारा यज्ञ किया जाय । पर अजके अर्थ बोज हैं, अतः बकरों को मारना उचित नहीं । जहाँ पशुओंका वध किया जाय, वहाँ सज्जनोंका धर्म नहीं है।’ ‘स्याद्वाद-मंजरी’ में अजका अर्थ विलकुल स्पष्ट कर दिया है—

किल वेदे ‘अजैः यष्टव्यं’ इत्यादि वाक्येषु मिथ्यादृशः अजशब्दं पशुवाचकं व्याचक्षते सम्यक् दृशस्तु त्रिवाषिकं पवत्रीत्यादि पर्ववसाययन्ति ।

इसी प्रकार अश्वमेधका अर्थ भी भ्रान्तिपूर्ण कर दिया है । अश्वमेध यज्ञका वास्तविक अर्थ तो ‘शतपथब्राह्मण’ में दिया गया है । उसका वचन है—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः । वीर्यं वा अश्वः ।

अश्वका अर्थ राष्ट्र है और राष्ट्रको शक्तिशाली बनाना ही अश्वमेध है ।

वाममार्गियोंने वेदोंमें गोमांसका विधान बना कर और यह लिख कर कि ‘वैदिक ऋषि गोमांस खाते थे और यज्ञोंमें गोमांसकी आहुति डाली जाती थी’, अनाचारका प्रचार किया है ।

यद्यपि ऋषियोंने इन शब्दोंको उत्तम अर्थके प्रतिपादकके रूपमें प्रस्तुत किया था, पर आगे जाकर धूर्तोंने उन्हें विकृतार्थवाला बना दिया । महाभारतका स्पष्ट कथन है—

सुरा मत्स्याः पशोर्मांसं आसवं कृशरदो नम् ।

धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद् वेदेषु विद्यते ॥

‘शराव, मछली, पशुका मांस आदि पदार्थोंको यज्ञमें डालनेका विधान वेदोंमें नहीं है । यह तो धूर्तोंका काम है ।’

एक और श्लोकमें कहा गया है—‘यदि यज्ञमें पशुओंको मारनेसे और पवित्र यज्ञ-विधिको अपवित्र करनेसे किसीको स्वर्ग मिल सकता है, तो फिर नरकका विधान किसके लिये है ?’

गोमेध शब्दसे भ्रान्ति

गोमेध शब्द भी भ्रान्तिका एक बड़ा भारी कारण बन गया है । इसीके कारण अनेक पाश्चात्य और पौरस्त्य विद्वानोंने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि वैदिक ऋषि गोमांस भक्षणके आदी थे । पर मुझे यह कहनेमें जरा भी संकोच नहीं है कि इस पक्षका समर्थन करनेवालोंने वेदोंका अध्ययन तो क्या, दर्शन भी नहीं किये हैं; इसी कारण वे इस भ्रान्तिके शिकार हो गये हैं । वेदोंमें ऐसे एक नहीं, अनेकों मन्त्र हैं, जिनमें स्पष्ट रूपसे गायको अवध्य बताया है । वेदोंमें गायके लिये ‘अघ्न्या’ शब्दका प्रयोग हुआ है । ‘अघ्न्या’ का अर्थ ही ‘अ-हन्तव्या’ (न मारे जाने योग्य) है । यह ऋग्वेदमें अनेक स्थलों आया है (देखो ऋग्वेद १, १६४, २७, १, १६४४०, ४, १, ६, ५, ८३, ८, ७, ६८, ६, ८, ६६, २, ६, ६३, ३, १०, ८७, १६) । वेदोंमें गायको आदरणीय बताया है । गायके मांस की तो बात ही दूर रही, उसके दूधको भी जबरन ले जाना पापका कारण बताया है । ऋग्वेदका मन्त्र है—

यः पौरुषेयेण ऋविषा सभुंभते यो अश्व्येन पशुना यातुपानः।
यो अघ्न्यायाः भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसाऽपि वृश्वा।
(ऋग्वेद १०।८७।१६)

हे अग्ने ! जो मनुष्यके तथा घोड़े आदि पशुओं-
के मांसको खाता है, और जो जबरदस्ती गायके
दूधका अपहरण करता है, वह राक्षस है...

गां मा हिंसीः अविंति विराजम् । (यजुर्वेद १६।४३)

“अवध्य गौ को मत मारो ।”

अघ्न्या इयं सा वर्धतां सौभाग्याय ।

“यह गौ हमारी समृद्धिके लिये बड़े ।”

अन्तकाय गीघातकम् । (यजुर्वेद ३०।१८)

गायको मारने वाला यमराजके सिपुदं हो ।”

इस प्रकार अनेक मन्त्र हैं, जिनमें गाय न मारनेका
विधान है । गाय वस्तुतः राष्ट्रका ऐश्वर्य है, राष्ट्रकी
समृद्धि है और राष्ट्रकी सर्वतोमुखी उन्नतिका कारण
है । उसकी रक्षामें ही राष्ट्रकी सुरक्षा निहित है ।

— पद्मभूषण डा० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
(लोकालोकसे साभार)

प्रचार-प्रसंग

(क) श्रीपिछलदा गौड़ीय मठमें श्रीस्नानयात्रा—

गत २८ ज्येष्ठ, १० जून, मंगलवारको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शाखामठ श्रीपिछलदा
गौड़ीय मठमें श्रीश्री गुरु-गौराङ्ग-राधा विनोदबिहारीजीका स्नानयात्रा महोत्सव खूब समारोहपूर्वक
मनाया गया है । उक्त दिवस त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त उर्द्धमन्थी महाराज, त्रिदण्डिस्वामी
श्रीमद्भक्तिवेदान्त न्यासी महाराज आदि वक्ताओंने विराट धर्मसभामें स्नान-यात्राके महत्व तथा
श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित ‘शुद्धाभक्ति’ तथा ‘हरिनाम-संकीर्तन’ आदि
विषयों पर सुन्दर भाषण दिये । अन्तमें लगभग ५००० श्रद्धालु भक्तोंको श्रीमहाप्रसाद वितरण
किया गया । इस अनुष्ठानके आयोजन आदि विषयमें वहाँके मठ-रक्षक श्रीपाद रमानाथ व्रजवासीजी-
का प्रयास अत्यन्त स्तुत्य रहा है ।

(ख) गत ११ आषाढ़, २५ जून मंगलवारको श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके सप्तम गोस्वामी
जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुरजीका विरह महोत्सव श्रीगौड़ीय-वेदान्त-समितिके सभी
शाखा मठोंमें, विशेषतः श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें और श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
मथुरामें अधिक समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है ।

उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें सबरे मंगलारति और संकीर्तनके पश्चात्
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी अतिमर्त्य
जीवनी एवं उनकी शिक्षाओं पर विशदरूपसे प्रकाश डाला ।

— श्री कृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी

चातुर्मास्य-व्रत

विधान

शास्त्रोंमें यत्र-तत्र अनेकों स्थलोंमें चातुर्मास्य-व्रतकी बड़ी महिमा बतलायी गयी है। कर्मों, ज्ञानी, भक्त, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी तथा संन्यासी, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यादि प्रत्येक हिन्दूके लिये इस व्रतका पालन करना कर्तव्य बतलाया गया है। 'हरिभक्तिविलास' ग्रन्थमें तो यहाँ तक कहा गया है कि जो व्यक्ति चातुर्मास्यके समय कोई नियम या व्रतका धारण किये बिना अथवा जप आदिसे रहित होकर यों ही बीता रहता है, वह मूर्ख व्यक्ति जीवित रहकर भी मरेके समान ही है—

यो बिना नियमं मर्त्यो व्रतं वा जप्यमेव वा ।
चातुर्मास्य नयन्मूर्खो जीवन्नपि मृतो हि सः ॥
(हरिभक्तिविलास १५।६०)

क्या भगवान भी सोते हैं ?

शास्त्रोंमें ऐसा बतलाया गया है कि श्रीभगवान वर्षाके चार महीने—शयन एकादशीसे लेकर देवो-त्यान एकादशी तक शयन करते हैं। इस शयन-कालमें मनुष्यमात्रको भगवानकी सेवा करनी चाहिये तथा ऋमशः अपनी हरि-सेवा-प्रवृत्तिको उत्तम करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि क्या भगवान् भी हमलोगोंकी भाँति शयन करते हैं ? उत्तर यह है कि नहीं, भगवान हम लोगोंकी भाँति शयन नहीं करते। उनको अज्ञान, माया, मोह, तन्द्रा आदि

मायिक व्यापार कभी भी स्पर्श नहीं कर सकते। वे त्रिगुणातीत या मायातीत हैं; वे सर्वदा सत्य-स्वरूप, ज्ञान-स्वरूप और आनन्द-स्वरूप हैं।

भगवान बड़े दयालु हैं। जीव उनके सेवक हैं। जीव दो प्रकारके होते हैं—बद्ध और मुक्त। जो जीव अपने नित्य-स्वरूपसे नित्यकाल नित्य भगवान् द्दाममें अपने परमाराध्य भगवानकी सेवामें तत्पर हैं—वे मुक्तजीव हैं; इन्हें पार्षद कहते हैं। जो जीव अपनी स्वतन्त्रताका अपव्यवहार करके भगवद् विमुख होकर अनादि कालसे स्वसुख-भोगके लिए मायाके वशीभूत होकर मायिक संसारमें पुनः-पुनः जन्म-मरणके चक्करके पड़कर त्रिविध तापोंसे जर्जरित हो रहे हैं, वे बद्धजीव कहलाते हैं। इन बद्धजीवोंकी विमुक्तता दूर करनेके लिए भगवानकी विविध लीलाओंका आविर्भाव होता है, शास्त्रोंका प्रादुर्भाव होता है।

मायामुग्ध मनुष्य साधारणतः सर्वदा अपने भोग-विषयोंके संग्रह और उन्हें भोगनेमें ही व्यस्त रहता है। शास्त्रोंने उनके कल्याणके लिए उनके इस कार्यमें अंकुश लगा कर उन्हें भगवानकी ओर ले चलनेके लिए इस प्रकारकी विधि दी है कि बारह महीनोंमेंसे कम-से-कम चार महीने विषय भोग आदिको चेष्टाओं अथवा सांसारिक कार्योंसे अलग रहकर सामर्थ्यके अनुसार अधिकसे अधिक रूपमें भोगोंका त्याग करके भगवद् उपासनामें व्यतीत किया जाय। इन चार महीनोंमें विवाह आदि सारे

सांसारिक शुभ कार्य बन्द रहते हैं, क्योंकि इन दिनों श्रीहरि मनुष्योंके इन विषयोंके प्रति शयन करते हैं। इसलिये इन दिनों सांसारिक शुभ कर्मोंका फल नहीं होता है या विपरीत होता है। परन्तु इसी समय भगवद्भक्तिके ग्रंथोंका नियमपूर्वक पालन, एकादशी आदि व्रतोंका पालन, श्रीमद्भागवत आदि श्रवणका अपूर्व माहात्म्य बतलाया गया है; क्योंकि इन भगवद्भक्तिके कार्योंसे श्रीहरिको बड़ा संतोष होता है, इससे उनका विश्राम होता है। इसलिये भक्ति विषयक क्रियाओंमें वे जगते हैं—

इत्याश्वास्य प्रभोरथं गृह्णीयान्नियमं व्रती ।

चतुर्मसिषु कर्त्तव्यं कृष्णभक्ति - विवृद्धये ॥

(हरिभक्तिविलास १५।५६)

—हे जगन्नाथ ! आपके शयन करने पर यह सारा जगत शयन करता है तथा जगने पर जगता है। हे अच्युत ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों।

भगवानके आगे इस प्रकार प्रार्थना करते हुए कृष्णभक्तिके लिए इन चार महीनों तक नियम-सेवा-व्रत अवश्य ग्रहण करना चाहिए।

इस व्रतके लिये स्कन्दपुराणमें इस प्रकारकी विधि दी गयी है—

जप-होमाद्यनुष्ठानं नाम-संकीर्तनस्तथा ।

स्वीकृत्य प्रार्थयेद्देवं गृहीतनियमो बुधः ॥

(हरिभक्तिविलास १५।६५)

व्रत-धारण करने वालोंके लिये होम, जप, श्रीहरिनाम संकीर्तन आदिका नियमपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिए।

समय

चानुर्मास्यकी गणना तीन प्रकारसे होती है—

(१) आषाढ़ महीनेकी शुक्ला द्वादशीसे कार्तिक शुक्ला द्वादशी तक। (२) आषाढ़ी पूर्णिमासे कार्तिकी पूर्णिमा तक तथा (३) सौर श्रावणसे सौर कार्तिक तक। इनमेंसे किसी भी एकके अनुसार चार महीने तक नियम-सेवाका विधिवत् पालन करना चाहिए।

विधि

सर्व-प्रथम भगवानके मन्दिरमें भगवद्-विग्रहके सामने हाथ जोड़ करके ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे भगवन् ! मैं आपके सामने चानुर्मास्य व्रत धारण करता हूँ। हे केशव ! आप कृपा करें, जिससे मेरा यह व्रत निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न हो जाय।'

व्रतके दिनोंमें तीर्थवास, जमीनपर सोना, ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन, पत्तलमें भोजन, अल्प आहार, अल्प शयन, आदि उत्तम हैं। प्रतिदिन स्नान कर भगवानकी विधिवत् पूजा करनी चाहिए। श्रीमद्भागवत आदि पुराण, अखण्ड दीपदान, इष्टमंत्र-जप और इष्टदेवकी विधिवत् पूजा कर्त्तव्य है।

इन दिनोंके लिए एक दैनिक कार्यक्रम बना लेना अच्छा होता है। सबेरे बिछीनेसे उठकर शांखादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर अपने अधिकारके अनुसार नियमपूर्वक संध्या-आह्निक, पूजा-पाठ और हरिनाम करना चाहिए। अधिकसे अधिक कोई संख्या निर्धारित करके नियमित रूपसे हरिनाम करना चाहिए। भगवानके प्रेमी रसिक भक्तोंके समीप श्रीमद्भागवत आदि भगवद्भक्तिके ग्रन्थोंका श्रवण करना चाहिए। उसके अभावमें स्वयं ही पाठ करना चाहिए। नियमित रूपमें श्रीतुलसी

महारानीकी-भगवानके मन्दिरोंकी, मथुरा, वृन्दावन पुरी, द्वारका आदि धामोंकी सत्संगमें परिक्रमा आदि करनी चाहिए। साधुसंगमें नवधा भक्तिका यथासाध्य श्रद्धापूर्वक पालन करना चाहिए। विशुद्ध वैष्णव संतोंकी सेवा अवश्य होनी चाहिए।

एक बात ध्यानमें रखनी आवश्यक है कि चातुर्मास्यके अन्यान्य विधि-निषेधोंका सम्पूर्ण रूपसे पालन करने पर भी यदि भगवद्भक्तिका आचरण न किया जाय, तो वह सारा अनुष्ठान प्राण-रहित शरीरकी भाँति व्यर्थ ही है।

जो लोग रोग आदि विशेष कारणवश चार महीनेका पूरा व्रत करनेमें असमर्थ हैं, वे केवल कार्तिकव्रत—श्रीदामोदर व्रत ही करके पूर्ण फल अर्जन कर सकते हैं। परन्तु यह असमर्थोंके लिये ही वैकल्पिक व्यवस्था है।

निषेध

चातुर्मास्यके श्रावण माहमें पालक, बधुघ्रा और अन्य पत्तेवाले साग, (२) भाद्रपदमें दही, (३) आश्विनमें दूध और (४) कार्तिकमें सरसोंका तेल आदि मांस जातीय वस्तुओंका व्यवहार वर्जित है। इनके अतिरिक्त सेम, बरबटी फली, परवल, लौकी, बैंगन, मसूर या मसूरदाल, उड़द, वासी अन्न, प्याज, लहसुन, गाजर, नागरमोथा आदिका परित्याग चारों महीनेके लिये ही कर देना चाहिए। तेल और मधुका उपयोग भी वर्जनीय है। धूम्रगान, मद्य-मांस, ताम्बूल भी वर्जनीय हैं। व्रतके दिनोंमें

अंकुर और बीजयुक्त स्थानोंमें आवागमन निषिद्ध है। हरिकथाके अतिरिक्त सर्वदा मौन रहना चाहिए। जो लोग व्रतका पालन नहीं करते, यथा-सम्भव उनसे दूर रहना चाहिए।

कुसंगसे सबदा बचना चाहिए। प्रधान कुसंग दो प्रकारके हैं—(१) जो भगवद्भजन नहीं करते और (२) जो स्त्रीसङ्ग करते हैं। इन दोनों प्रकार के लोगोंसे दूर रहना चाहिए। नख और केश आदि चार महीनोंतक नहीं कटवाना चाहिए, क्योंकि इससे विलासिता बढ़ती है और विलासिता हरि-भजनके मार्गमें प्रधान बाधा है।

उद्देश्य

चातुर्मास्य-व्रतका पालन सभी लोग करते हैं। कर्मी लोग—लौकिक और पारलौकिक स्व-सुख भोग के लिए, ज्ञानी—मोक्षके लिये तथा भोगी-तपस्वी—सिद्धिके लिए इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं। परन्तु इसका उद्देश्य इन्हीं नश्वर फलों तक ही सीमित नहीं है। इसका सर्व-प्रधान और चरम उद्देश्य कृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति है।

शास्त्रोंमें जहाँ चातुर्मास्य व्रतानुष्ठानका फल मोक्ष तथा स्वर्गीय और लौकिक सुखभोगोंकी प्राप्ति बतलाया गया है, वह केवलमात्र विषय भोगोंमें आसक्त कर्मियों और मोक्ष-सुखमें आवद्ध ज्ञानियोंकी भक्तिमार्गके प्रति क्रमशः आकर्षणके लिये ही है। अतएव चातुर्मास्य-व्रतका प्रधान और अन्तिम फल शुद्धरूपमें कृष्ण-सेवाकी प्राप्ति ही है।

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

षष्ठ वृष्टि (प्रथम धारा)

प्रेम भक्तिका विचार भेद

प्रेमाभक्ति—अब यहाँ प्रेमाभक्तिका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। हमने पहिले रतिका वर्णन किया है। रतिका दूसरा नाम भाव है। यही रति या भाव गाढ़ा होने पर प्रेम कहलाता है। (क) प्रेम उदित होने पर अन्तःकरण अतिशय मासृष्य अर्थात् आर्द्र हो जाता है। अधिक रूपमें भगवानमें अनन्य रूपमें ममता भी उत्पन्न हो जाती है (ख)। रतिकी विलास योग्यता होने पर ही उसे प्रेम कहते हैं। रतिमें ममता होती है परन्तु वह ममता उस समय अनन्य रूपसे नहीं होती है। शुद्धारतिमें साधक भगवानको अपना विषय मानता तो है, परन्तु उस समय भी वह इस अवस्थाको प्राप्त नहीं करता, जिसमें भगवान्के अतिरिक्त दूसरा कोई विषय ही नहीं होता है। जब साधककी रतिकी ऐसी गाढ़ी अवस्था हो जाती है कि कृष्णके अतिरिक्त दूसरा कोई विषय ही नहीं होता, उसी समय रतिमें विलासकी योग्यता उत्पन्न होती है।

रसके लिये उपयोगी रतिको ही प्रेम कहते हैं। प्रथम जिस रतिकी बात कही गई है, वह प्रेमके अंकुरस्वरूप शुद्धारति ही है, किन्तु उसमें तब तक रसकी उपयोगिता प्रकाशित नहीं हुई होती, क्योंकि उस समय तक उसमें कृष्णके प्रति अनन्य ममता लक्षित नहीं होती है। (ग)

स्थायीभाव—प्रेमावस्थाको प्राप्त रतिको ही स्थायीभाव कहते हैं। स्थायीभाव नहीं होनेसे रसावस्थाको कौन प्राप्त होगा? प्रेम कहनेसे प्रेमका आरम्भ मात्र ही समझना होगा? प्रेम दो प्रकारका होता है—

(१) भावोत्थ प्रेम और (२) प्रसादोत्थ प्रेम।

जहाँ भाव अन्तरंग अङ्गोंकी अनुसेवा (साधन) करते-करते परम उत्कर्षताको प्राप्त होता है, तब उसे भावोत्थ प्रेम कहते हैं (घ)। भावोंके अन्तरंग अङ्गोंको पहिले ही बतलाया जा चुका है। श्रीहरिके स्वरूपके संगसे जो प्रेम उत्पन्न होता है, उसे

(क) सम्यङ्ममृष्टितस्वान्तो ममत्वातिशयाच्छ्रितः ।

भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥ (भ.र.सि.)

(ख) अनन्यमयता विष्णो ममता प्रेमसङ्गता ।

भक्तिरित्युच्यते भीष्मप्रह्लादोद्धवनारदैः ॥ (पञ्चरात्र)

(ग) भक्तिः प्रेमोच्यते भीष्ममुखैर्वैत्र तु संगता । ममतान्वयममत्वेन वजितेत्यत्र योजना ॥

भावोत्थोऽति प्रसादोत्थः श्रीहरेरिति सा द्विधा ॥ भ.र.सि.)

(घ) भाव एवान्तरङ्गानामङ्गानामनुसेवया । आरुह्य परमोत्कर्षं तातोऽः परिकीर्तितः ॥ (भ.र.सि.)

प्रसादोत्थ प्रेम कहते हैं । भावोत्थ प्रेम दो प्रकारके हैं—

(१) वैधभावोत्थ प्रेम (क) और (२) रागानुग-भावोत्थ प्रेम (ख) ।

प्रसादोत्थ प्रेम दो प्रकारके होते हैं—

(१) माहात्म्यज्ञानयुक्त प्रेम

(२) केवल प्रेम

माहात्म्यज्ञानयुक्त प्रेम—विधि मार्गके क्रमानुसार साधन करते-करते जो प्रेम उदित होता है, उसे महीमज्ञानयुक्त प्रेम कहते हैं (ग) । उसीको कोई-कोई स्नेह-भक्ति भी कहते हैं (घ) । इसी प्रेमके द्वारा जीव सार्ष्टि, सारूप्य और सालोक्य आदि मुक्तियाँ प्राप्त करते हैं । मुक्त होकर भी जीव उन्हीं-उन्हीं भावोंके द्वारा भगवानकी सेवा करते हैं ।

केवल प्रेम—रागाश्रित साधन करते-करते जो प्रेम उदित होता है प्रायः वही प्रेम केवलत्वको प्राप्त है (ङ) । यहाँ प्रायः शब्दका अर्थ यह है कि यदि रागानुग भक्तिके साधन कालमें वैधी भक्तिके अङ्गोंमें आसक्ति रहती है, तो वह प्रेम केवल नहीं होता । रागानुग-साधन भक्तिमें केवल अभ्यासके कारण

ही वैधी भक्ति-अङ्गोंका पालन बाह्यरूपमें गृहीत होता तो है, परन्तु उसमें आसक्ति नहीं होती । ऐसी दशामें ही सिद्धिकालमें केवल प्रेम उदित होता है ।

प्रेम ही सर्वार्थ शिरोमणि है ।

प्रेमके उदय होने पर जीवन सार्थक हो जाता है । जीव सर्वार्थ-सिद्धि लाभ करता है (च) । उसके सम्पूर्ण अमंगल दूर हो जाते हैं । जीवके लिये प्रेमसे बढ़कर और कोई भी अन्य लाभ नहीं है । प्रेमके समीप मोक्ष अत्यन्त क्षुद्र और क्षणिक तत्व है । प्रेमके बहुतसे गौण फलोंमें से मोक्ष एक गौणातिगौण फल है । जड़ीय सम्बन्धोंके रहते-रहते ही यदि प्रेम उदित हो जाता है, तो उस समय जड़ सम्बन्ध उपलब्ध नहीं होता । प्रेमी भक्तोंका जीवन कृष्णमय हो जाता है; उसमें जड़ संगकालेश भी नहीं रहता । सूर्योदयके समय खद्योतकी भाँति प्रेमके उदय होने पर विधियाँ (वैधी भक्ति) छिप जाती हैं । प्रेमी भक्तोंकी दृष्टिमें संसार भी वैकुण्ठके रूपमें प्रतिभात होता है ।

(क) यथा एकादशे तल्पक्षरानि—एवं व्रतः स्वप्रियनामकोत्प्या जातानुरागो द्रुतचित्त उर्ध्वः ।

(ख) न पति कामयेत् कश्चिद् ब्रह्मचर्यमस्थिता सदा । तामेवमूर्तिं श्यायन्तो चन्द्रकान्तिर्वरानना ॥

श्रीकृष्णगाथा गायन्ती रोमञ्चोद्भेदलक्षणा । अस्मिन्मन्यन्तरे स्निग्धां श्रीकृष्णप्रियवार्त्तया ॥

(ग) महिमज्ञानयुक्तः स्याद्विधिमार्गानुसारिणाम् । (भ.र.सि.) (पद्मपुराण)

(घ) माहात्म्यज्ञानयुक्तस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः ।

स्नेहभक्तिरिति प्रोक्तस्तथा सार्ष्ट्यादि नान्वथा ॥ (पंचरात्र)

(ङ) रागानुगाश्रितानास्तु प्रायशः केवलो भवेत् ।

मनोगतिरधिच्छिन्ना हरी प्रेमपरिप्लुता । अभिसन्धिविनिर्मुक्ता भक्तिर्विष्णुवशंकरी ॥ (पंचरात्र)

(च) धन्यस्ययं नरः प्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि । अन्तर्वाणीभिरप्यस्य मुद्रा मुष्टु मुदुर्गमा । (भ.र.सि.)

द्वितीय धारा

प्रेमोदयका क्रम विकास

साधनासे लेकर साध्य-अवस्था तक प्रेमोदयके बहुतसे क्रम हैं। इनको जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। ये उदयक्रम निम्नलिखित नौ अवस्थाओंमें परिलक्षित होते हैं—

१. श्रद्धा, २. साधु-संग, ३. भजन-क्रिया, ४. अनर्थ-निवृत्ति, ५. निष्ठा, ६. रुचि, ७. आसक्ति, ८. भाव, और ९. प्रेम। (क)

श्रद्धा-नीतिशून्य जीवन पशुतुल्य होता है। इसमें बुद्धिके द्वारा पदार्थ-विज्ञान और शिल्प आदि की उन्नति द्वारा जो इन्द्रिय सुख-समृद्धि होती है वह सर्वथा आसुरिक उन्नति है। ऐसी उन्नतियाँ अनित्य और अकिञ्चित्कर होती हैं। नैतिक जीवन

नीतिबद्ध होने पर भी परमार्थके लिये सर्वथा अनुपयोगी होती हैं, क्योंकि इसमें ईश्वरभावका अभाव होता है। सेश्वर-नैतिक जीवनमें परलोक और ईश्वर—इन दोनोंके भाव होनेपर भी इस जीवनका उद्देश्य अशुद्ध, क्षुद्र और अतृप्तिकर होता है। जीव उसमें आबद्ध नहीं रह सकता। अभेदवादीका जीवन अत्यन्त हेय और कुपथ पर चलनेवाला होता है। इसलिये केवल भक्त-जीवन ही अवलम्बन करने योग्य है (ख)। परमेश्वर सर्वान्तर्यामी, सर्वकर्ता और सर्वनियन्ता हैं। उनके चरणकमलोंमें अनुराग होना ही अच्छा है। और दूसरे प्रकारके जितने भी अच्छे हैं, वे सभी उसी अनुरागके अधीन हैं। अपनी चेष्टारूप कर्म तथा अपनी बुद्धिरूप ज्ञान—ये दोनों

(क) आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया । ततोऽनर्थनिवृत्तिःस्वात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः ॥

अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति । साधकानामयं प्रेम्नः प्रादुर्भवि भवेत् क्रमः ॥

भक्तिरसाभृतसिन्धु ४ लहरी ॥

(ख) प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः । अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः । कमिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना । श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

(गीता ६।४५-४७)

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः । ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् । साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवस्थितो हि सः ॥

क्षिप्रं भवति घर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति । कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रशस्यति ॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य योऽपि स्युः पापयोनयः । स्त्रियो वैश्यस्तथा शूद्रास्तेऽपि वान्ति परां गतिम् ॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा । अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥

(गीता ९।२९-३३)

अतिशय क्षुद्र और ससीम हैं। उनके द्वारा परमेश्वर-को प्रसन्न नहीं किया जा सकता है। निःस्वार्थ भगवद्भक्तिके द्वारा ही वे प्रसन्न होते हैं। अतः निःस्वार्थ भगवद्भक्ति करना ही जीवोंका प्रधान एवं एकमात्र कर्तव्य है। दुर्भाग्यसे हम जड़ीय स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर—इन दोनोंके द्वारा बंध कर विभिन्न योनियोंमें भ्रमण करते हुए त्रिताप ज्वालासे दग्ध हो रहे हैं। हमारी इस दुर्दशाका कारण है—हमारी भगवद्विमुखता। जीव ही अपने बंधनका (प्रयोज्य) हेतुकर्ता है। भगवान् उसमें प्रयोजक-कर्ता हैं, जगत मिथ्या नहीं है। परन्तु सत्य होनेपर भी नित्य नहीं है, अर्थात् ध्वंस-शील है। यह जगत भगवद्विमुख जीवोंको दण्ड देकर शुद्ध करनेका स्थान—कारागारस्वरूप है। भगवान् बड़े ही दयालु हैं। वे जीवोंको दुःखी देख-कर संसार-सागरसे उद्धार करनेके लिये उनके साथ-साथ भ्रमण करते हैं। वे सर्वदा इस विषयमें प्रयत्नशील रहते हैं कि जीव अपनी ही चेष्टासे इस योग्य बन जाय कि वह उनकी (भगवानकी) लीलाओंका रसास्वादन कर सके। भगवान् इच्छा करनेसे ही सम्पूर्ण जगतका उद्धार कर सकते हैं, परन्तु उनकी अचिन्त्यलीलाके प्रभावसे ही जीव भक्तिमार्गमें प्रवेश पानेका प्रयत्न करे, इसीके लिए भगवान् उपदेश देते हैं या प्रयत्न करते हैं। पिता अपने अयोग्य पुत्रको भी अपनी सारी सम्पत्ति दे सकता है; परन्तु पुत्रको सुयोग्य बनाकर तत्पश्चात्

उसे सम्पत्ति देनेपर वह अधिकतर आनन्द अनुभव करता है। यही भगवत्-स्नेहका परिचय है। भगवद्दास्य ही जीवके लिये श्रेयः और प्रेयः है।

(१) श्रेयः और प्रेयः—इस विश्वासका नाम ही श्रद्धा है—ऐसे विश्वासको श्रद्धा कहते हैं। हमने विस्तारपूर्वक लिखा है, परन्तु संक्षेपमें भगवद् विश्वासको ही श्रद्धा करते हैं। भगवत्-तत्त्वमें दृढ़ विश्वास और अपनी क्षुद्रतामें विश्वास—ये दोनों जिस समय उदित होते हैं, उसी समय श्रद्धालु व्यक्तिके मुखसे पूर्वोक्त बातें निकलने लगती हैं। विश्वास-तत्त्वका विभाग करके भलोभाँति विचार करनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि भगवद्विश्वासके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न प्रकारके विश्वास विद्यमान रहते हैं। परानन्दस्वरूप श्रीश्रीचैतन्यचन्द्रने इस विश्वासको भक्तिलताका बीज बतलाया है। भगवद्भक्तोंके जीवन-चरित्रपर अनुसन्धान करनेपर ऐसा देखा जाता है कि निरपेक्ष होकर शास्त्रोंका विचार करनेपर ऐसी श्रद्धा किसी-किसीको प्राप्त हुई है। बहुतोंमें साधुसङ्ग और साधुओंके उपदेशों से वैसी श्रद्धा उदित हुई है, किसी-किसीको स्वधर्म-चरणका आचरण करते-करते कर्मफलके प्रति घृणा हो जानेपर भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई है। किसी-किसीको ज्ञानके फलके प्रति घृणा होनेसे श्रद्धा उदित होती है। और किसी-किसीमें आकस्मिकरूपमें श्रद्धा उदित हो पड़ती है।

(कमशः)

छप गया !

छप गया !!

छप गया !!!

जैवधर्म

वर्षोंसे पाठक जिस ग्रन्थको बड़ी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे, वह "जैवधर्म" (हिन्दी संस्करण) प्रकाशित हो गया है ।

यह ग्रन्थ वर्तमान वैष्णव जगतमें विशुद्ध भक्ति-भागीरथीकी पुनीत धाराको पुनः प्रबल वेगसे प्रवाहित करनेवाले, विभिन्न भाषाओंमें भगवद्भक्ति सम्बन्धी सैकड़ों ग्रन्थोंके रचयिता श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय पार्श्वद, सप्तम गोस्वामी श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा बंगला भाषामें लिखित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—'जैवधर्म' का हिन्दी अनुवाद है । अनुवादक हैं—'श्रीभागवत पत्रिका' (मासिक परमार्थिक पत्र) के सम्पादक—त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज ।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत अखिल भारतीय गौड़ीय मठोंके संस्थापक आचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा संपादित होनेसे इस ग्रन्थकी उपादेयता और भी बढ़ गयी है ।

इसमें अखिल विश्वके निखिल जीवोंके सार्वत्रिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक नित्य और सनातन धर्म—जैवधर्म (जीवका धर्म) का हृदयग्राही एवं साङ्गोपाङ्ग वर्णन है । इसमें वेद-वेदान्त, श्रीमद्भागवत आदि पुराण, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, पंचरात्र एवं श्रीगौड़ीय-गोस्वामियोंके भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, षट्-सन्दर्भ, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि सद्ग्रन्थोंका सार सहज, सरल और रुचिकर भाषामें उपन्यास-प्रणालीमें गागरमें सागरकी भाँति भरा हुआ है ।

हिन्दी भाषामें श्रीगौड़ीय-वैष्णव धर्म और उसके सिद्धान्तोंका यह सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रन्थ है । हिन्दी साहित्यमें अब तक वैष्णव धर्मके, विशेषतः श्रीगौड़ीय वैष्णव धर्मके परमोच्च दार्शनिक सिद्धान्तों एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना पद्धतिका बोध करनेवाले ऐसे अपूर्व सुन्दर और सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थका सर्वथा अभाव था । यह "जैवधर्म" हिन्दी जगतकी इस अभावको पूर्ति कर दार्शनिक एवं धार्मिक जगतमें, विशेषतः वैष्णव जगतमें युगान्तर उपस्थित करेगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

अतः पाठकोंसे हमारा विशेष अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थरत्नका संग्रह कर अवश्य ही अध्ययन करें ।

सोलह पेजी २० × ३० आकारके ६०० पृष्ठोंकी सजिल्द पुस्तक । उत्तम कागज पर सुन्दर छपाई । मूल्य केवल १०) रुपये ।

मँगानेका पता—

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ

पो०—मथुरा (उ. प्र.)
